LOVE UP-TO-DATE.

आजकल का प्रेम

हिन्दी-संसार के चिरपरिचित श्री जयशंर 'प्रसाद,'
श्री प्रेमचन्द, श्री सुदर्शन, श्री चतुरसेन शास्त्री,
चण्डीप्रसाद 'हृदयेश,' श्री इलाचन्द्र जोशी,
पाण्डेय बेचनशर्मा "उग्र" आदि
की उच्चकोटि की कहानियों
का अनुपम संकलन

संकलनकर्त्री—

श्रीमती पार्वती देवी

प्रकाशक—

शंकर सिंह,

हिन्दी-पुस्तकालय, सोराकुआँ, बनारस।

प्रथम संस्करण १५००] सन् १९३८
द्वितीय संस्करण १०००] सन १९४५ } मूल्य सजिल्द २।)

पता—शंकर सिंह,
हिन्दी-पुस्तकाल,
सोराकुआँ, बनारस।

मुद्रक—
शिवप्रसाद गुप्त,
जाब प्रेस, कर्णघंटा, बनारस।

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या

दो शब्द

इधर कुछ दिनों से मै पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियाँ बड़े चाव से पढ़ती थी। अवश्य ही उनमें अच्छी भी होती थीं और बुरी भी; इतनी बुरी कि 'येनकेन प्रकारेण' कहानी समाप्त करने के बाद जी में आता था—अब कहानी कभी न पढूंगी। किन्तु कोई कोई कहानी कभी कभी इतनी अच्छी दिखायी पड़ जाती थी कि अनिच्छापूर्वक दो-चार पंक्तियां पढ़ने ही वह अपने में उलझाकर पुराना निश्चय तोड़ने के लिए विवश कर देती थी और फिर भविष्य में कहानी पढ़ने के लिये उत्सुकता पैदा कर देती थी। उसी समय मेरे ध्यान में यह बात आयी थी कि यदि कहानी पढ़ने में इस प्रकार कड़वा और मीठा स्वाद न मिलकर केवल मीठा ही मीठा स्वाद मिले तो बड़ा ही उत्तम हो। फिर क्या था, मैंने चुन चुनकर कहानियों को रखना शुरू कर दिया और कुछ ही दिनों में मेरे पास हजारों पृष्ठ का मसाला इकट्ठा हो गया। आज मैं संग्रह की हुई उन्हीं कहानियों में की कुछ कहानियां 'आजकल का प्रेम' नाम से प्रकाशित करा रही हूँ। मुझे विश्वास है कि इस संग्रह में पाठक-पाठिकाओं को माधुर्य ही माधुर्य का अनुभव होगा और वे इसे बड़े चाव से पढ़ेंगे। तभी मैं अपना प्रयत्न सफल समझूँगी; क्योकि कहानियों के संग्रह करने का एकमात्र यही उद्देश्य हुआ करता है।

'प्रेम' और 'आजकल के प्रेम' में बहुत अन्तर है। इसमें सन्देह नहीं कि इस संग्रह की कुछ कहानियों में शुद्ध प्रेम की झाँकी है और कुछ में दूषित प्रेम का भारी आडम्बर; कुछ कहानियों में प्रेम की बू भी नहीं हैं: फिर भी पुस्तक का नाम 'आजकल का प्रेम' रखना ही मुझे उत्तम जँचा। इस पुस्तक में दो-तीन कहानियाँ ऐसी भी है जो अब तक किसी पत्र-पत्रिका में प्रकाशित नहीं हुई हैं। इस संग्रह में कैसी कहानियाँ हैं, इसका पता पाठकों को कहानी-लेखकों की नामावली देखने से ही चल जायगा।

अन्त में मैं उन लेखकों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती हूं जिनकी कहानियाँ इस पुस्तक में छपी हैं। साथ ही, उन पत्र-पत्रिकाओं का भी मुझ पर विशेष ऋण है जिनमें ये कहानियाँ प्रकाशित हुई थीं। मैं स्वर्गीय 'हृदयेश' जी की 'प्रेम-पुष्पांजलि' शीर्षक कहानी सबसे पहले नहीं दे सकी, इसका मुझे विशेष दुःख है। इसके लिए मैं उनकी स्वर्गीय आत्मा से क्षमा की भीख माँगता हूँ।

—पार्वती

आजकल का प्रेम

LOVE UP-TO-DATE.

लेखक—

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

कानपुर कर्नलगंजके बाबू बनवारीलाल वर्मन जब बी० ए० में थे तभी उन्होंने प्रतिज्ञाकी थी कि पिताके मर जाने ही पर अपनी नव-विवाहिता पत्नीको घरमें लावेंगे।

क्योंकि; बर्मनजीके शब्दोंमें उनके "पिता पुराने विचारोंके और नये जमानेके लिये बिलकुल फ़िजूल आदमी" थे। पिताकी पसन्द की हुई लड़कीसे बनवारीलालजी शादी भी न करते, क्योंकि; वह पढ़ी-लिखी अप-टु-डेट नहीं, मगर; इतनी उच्छृङ्खलता "बुड्ढा बर्दाश्त न करता" इसलिये "डिप्लामेटिकली" बाबू साहबको शादी करनी ही पड़ी। बुड्ढेके पास उनकी गाढ़ी कमाईके पाँच लाख रुपये थे और नाराज होनेपर वह बनवारीलालजीको पांच कौड़ी भी न देता!

पढ़े-लिखे, नये विचारोंके बर्मन बनवारीलाल, सच पूछिये तो अद्वाये

अपने पिताको पिता नहीं मानते थे। वह मानते थे धनके दबावसे—लालचसे!

बेपढ़ी बीबीसे व्याह करते वक्त उन्होंने मन-ही-मन यह सोच लिया था कि, "बुड्ढा आज नहीं तो कल अपनी राह लगेगा ही, तब मैं बेपढ़ी को पढ़ी-लिखी और असभ्यको पूरी 'कलचर्ड' बना लूँगा।

"हूँ हूँ!"—उन्होंने ज्ञान (?) से गंभीर विचार किया—"इसे मनहूस मकानमें—जिसमें मेरे सात पुश्त पैदा होकर गुजर गये—भला मैं 'अपनी हृदयेश्वरी' को रक्खूँगा—हिह! बुड्ढेके मरते ही मैं एक नया बँगला बनवाऊँगा। बँगलामें खासा अच्छा 'गार्डेन' होगा—गार्डे पार्टी होगी और तब होगी मेरी भेंट उस छबीली, नुकीली, प्यारीसे जिसको मैं हर तरहसे अप-टु-डेट बनाना चाहता हूँ...। मैं उसको मेमसे पढ़वाऊँगा, साहबसे सिविलाइज्ड बनवाऊँगा—यानि, अपनी निरक्षरा बीबीको विदुषी, विशारदा बनानेमें मैं बुड्ढेके पचास हजार रुपये खर्च करूँगा। तब कहीं हम दोनों का 'मेण्टल इक्विलिब्रियम' सही होगा। तब कहीं यह अर्धाङ्ग रोग न बनकर, सर्वाङ्ग का सुन्दर पूरक बनेगा।"

बेटेकी उम्र रोज़-रोज़ बढ़ती देख और आँखें पातालको धँसती देख; बुड्ढा जब कभी बर्मनजीसे गौनेकी चर्चा चलाता तभी आप बातें बना देते—

"जल्दी क्या है...अभी 'हाई स्टडीजमें डिस्टर्बेन्स' का डर है। एम० ए० पास कर लूँ पहले..."

मगर, पहले बर्मनजीका मालदार "बुड्ढा" मरा, फिर उन्होंने एम ए० पास किया, फिर उसी मुहल्लेमें कुशादा जमीन खरीदकर बँगला तैयार कराया गया और तब कहीं वह अपनी बीबी को ससुराल से ले आये।

"बँगला-प्रवेश" जिस दिन होनेको था उसी दिन गार्डेन-पार्टी

का इन्तजाम किया गया। पार्टीके बाद ही, बर्मन बनवारीलाल एम० ए० ने "हनीमून" का भी प्रोग्राम रखा...।

पार्टीवाले दिन नये बंगले के फाटक पर खड़े बर्मन बनवारीलालजी ने "होस्ट" की हैसियतसे मेहमानोंका स्वागत किया और अफसोस जाहिर किया इसलिये कि: "देशमें शिक्षाका अभाव होनेके कारण" उनकी पत्नी "इतनी एडूकेटेड नहीं" कि: मेहमानोंकी खुशामद अच्छी तरह कर सके।

मेहमानोंको बर्मनजीने विश्वास दिलाया कि: जल्द ही उन्हें उस बंगलेमें एक 'स्मार्ट होस्टेस' का अभाव न खटकेगा।

पार्टीमें बर्मनजीने सारा प्रबन्ध विलायती ढंगसे किया था। बंगलाके जरबागमें 'लेटेस्ट' ढंगकी छोटी-छोटी मेजोंके सामने दो-दो, तीन-तीन 'गेस्ट' बैठे थे। खाने-पीने या "कैटरिङ्ग" का सारा "कांट्रेक्ट" कानपुरके एक मशहूर अंग्रेजी होटेलको सौंपा गया था। होटेलहीका "आर्केस्ट्रा" बर्मनजीके बंगलेपर विलायती धुनें बजा रहा था और होटेलहीके छोकरे 'सर्विस' में हाजिर थे।

हरेक मेहमानको इत्मीनानसे खाने और खुश्क गलेसे पीने देख बर्मन बनवारीलाल भी चन्द चुने दोस्तोंमें अपनी मेजके सामने बैठ गये। सुरासे पहले मुर्गीके बच्चेका 'सूप' 'सिप' करते हुए उन्होंने एक मित्रसे कहा—

"आज मैं अपनेको आदमी समझ सका हूँ...हमारे बुजुर्गोंका ढंग कितना पुराना, कितना सड़ा है कि; उसमें साँसें लेना भी नामुमकिन हैं। खायँगे तो थालीमें भैंस इतना, पीयेंगे तो कोरा, फीका पानी, रहेंगे दरबेमें, मांदमें, 'डेन' में और कौड़ीको दाँतसे पकड़े रहेंगे—"मैं मरि जैहौं तोहि न भजैहौं।"

"पुरानेपनका सत्यानाश! नई रोशनी जिन्दाबाद!' बर्मनजीके एक मित्रने मदके पात्रको हवामें हिलाते पीते हुए कहा...

"ज़िन्दाबाद ! ज़िन्दाबाद !!" दोस्तोंके गिलास 'गुडलक' की इच्छा से झूमने-टकराने लगे...

"सो..." एक मित्रने पूछा बर्मनजीसे "आज आप 'फर्स्ट लव' के दर्शन पायेंगे ?"

"ट-ट !" दोस्तके अज्ञानपर बर्मनजीने आश्चर्य प्रकट किया—"फर्स्टलाव...और आजके लिये ? आप देखते नहीं, मैं काफी बूढ़ा हो चला। कैसे ? इसी 'लव' ही से तो ! आज रातको मैं अपना 'सेविन्थ लव' देखूंगा।"

"सातवाँ प्रेम...!" दोस्तने आश्चर्य प्रकट किया—"तब तो आप छुपे रुस्तम हैं। बापजीसे पढ़नेका बहानाकर सात-सात सुन्दरियों से प्रेम-पाठ...!"

"सुनिये !" बनवारीलालजीने मित्रकी भूलको सुधारा—"मेरे सातों माशूक 'शी' ही नहीं, कुछ 'ही' भी थे ! आप पूछेंगे—वाह !' 'ही' क्यों ? मैं कहता हूँ प्रेम अन्धा होता है। वह 'ही' या 'शी' नहीं देखता...।"

"जो हो...।" मित्रने कहा—"प्रेमके मैदानमे मैं 'ही' यों से 'शी' यों को ज्यादा दाद देता हूँ। अब आप यह बतलाइये आपकी पहली स्त्री मित्र कौन है ?"

"मिस रेवा...आपने सुना है उनका नाम...?" प्रसन्नतासे खिलकर बर्मनजीने पूछा—

"हाँ—हाँ," मित्रने दावेसे जवाब दिया—"वह आजकल बंबई की उसी फिल्म कंपनीमें हैं जिसकी तस्वीरें ज्यादातर 'हूपी टाइप' की होती हैं।"

"ठीक..." शराबका सातवाँ 'पेग' पीते हुए बनवारीलालजीने कहा—"वही-वही मिस रेवा जब कानपूरमें थीं और पढ़ती थी कालेजमें, तभी, हममें 'डीप लव' हो गया था।"

" 'डीप लव' के मानें क्या 'स्केण्डल' हैं ?"

"नो ! नो !" सुरा-गम्भीरसुर से बर्मनजीने कहा—"मिसरेवासे लव होनेके पहले ही मैं 'इम्पोटेण्ट' हो गया था। लड़के-बच्चेकी नजर में तो फ़िजूल मैं आज भी हूँ...। हजार प्रेम करने पर भी, सामना होने पर, स्त्रीसे मुझे संकोच होता है... ..।"

"हैवलाक एलिस ने कहा है......"

"हैवलाक एलिससे..." मिश्रकी बात काटते हुए बर्मनजीने कहा—"फ्रायडकी राय मनोविज्ञान और काम-विज्ञान पर आजकल अधिक मान्य है। फ्रायडके मतानुसार बहुत दिनों तक जबरदस्ती ब्रह्मचारी रहनेसे आदमी स्त्री-प्रसंगसे संकोच करने लगता है। मगर; उसीको जब कोई नवेली, छबीली, जी-जानसे चाहकर पुरुषत्वको उत्तेजित करती है तब वह पुनः पौरुषपूर्ण हो जाता है। लेकिन..."

"क्या लेकिन......?"

"स्त्री-प्रसंग पर मेरी और ही राय है..." गम्भीरतासे विद्वान् बर्मनजीने कहा—"मैं औरतका दिल चाहता हूँ और चाहता हूँ उसकी 'ब्यूटी' अगर कोई जवान औरत मेरे सामने मस्तीसे मुस्करा दे तो, मैं उसे चूमना न चाहूँगा। 'नजरियोंसे 'अगर कोई माशूक़ 'दिल भर सके, तो मैं उसके शरीर' को नहीं 'छूना' चाहूँगा ...।"

कोई १॥ बजे रात बर्मनजीकी गार्डन-पार्टी समाप्त हुई। अतिथि अपने अपने रथ-वाहनों पर सवार हो स्थानोंको गये...और अब वह नशेमें बेहोश झूमते-लड़खड़ाते बंगलेके उस कमरेकी ओर चले जिसमें 'सोहाग रात' की व्यवस्था थी। जिसमें उनकी अशिक्षिता पत्नी प्रतीक्षा करती-करती नींदसे बेहोश होकर सो गई थी।

कमरेमें पहुँचते ही बर्मनजीने दर्वाजा बन्द कर लिया, सारे विदेशी कपड़े उतार दिये और अलिफ़ नंगे होकर वह पलँग पर जा धमके !

जरा आहट पाते ही उनकी पत्नी जाग पड़ी और एक मादरजात

नंगेको अपनी पलंगपर दुर्गन्धित देख, मारे भयके वह चिल्ला उठी—

"बचाओ ! चोर !!"

"शटअप !" जोरसे स्त्रीका मुँह दबा बर्मनजीने धीरेसे कहा—"मेरी जान ! मैं हूँ ...। पार्टी खत्म हो गई। अब सोओ मत ! आओ ! अब हम तुम मस्तीसे जागें।" पास ही बोतल दिखाकर उन्होंने कहा—"पीओ ! पहले पी लो ! तब तुम जानदार मालूम पड़ोगी।"

"मैं नहीं पीती...हटो !" पतिको पहचानकर और पहचानकर उसकी दुर्गतिको वह बेचारी मारे दुखके मूर्च्छित होनेसे बची।

"अनड्रेस योर सेल्फ...कम नीयर डीयर !' बेहोश प्रेमीने आर्डर दिया।

"मैं आपकी बात नहीं समझती..." काँपती हुई नव-वधू बोली—'आप कपड़े पहन लीजिये...!'

"नंगी हो !...जंगली !' औरतकी ना-समझीसे चिढ़कर बेहोश बनवारीलाल एम० ए० अप-टू-डेट ने कहा—"बिना नंगी देह देखे मुझे 'सेक्स अपील' नहीं होती...देहाती ढंग भूल जा ! उतार कपड़े !"

"आपकी तबीयत ठीक नहीं—"बेचारी बात टालती बोली—"आप सो रहिये शान्तिसे..."

"अह !—यू ईडियट !' औरतकी ओर झपटते हुए बर्मनजी ने कहा—"मैं ही तुझे नंगी किये देता हूँ। ऐसी-तैसी ऐसी लाजकी जिससे खुले प्रेममें बाधा पड़े !'

बनवारीलालने अपनी पत्नीका अंचल पकड़ लिया—नंगा करने के मस्त इरादेसे ! लेकिन वह बेचारी सिकुड़कर जमीनपर बैठ गई—अपनेही पतिके बलात्कारसे बचने के लिये—!

"खबरदार ! मैं वेश्या नहीं—भले घरकी बेटी हूँ... शराब के नशे में तुम मुझे नंगी—बेइज्जत नहीं कर सकते !" आखिर वह सावेश बिगड़ी।

"मैं तुझे नङ्गी करूँगा...!"

"मैं नहीं हूँगी...हट !...हटो !"

दाँत काटकर उसने शराबीके चंगुलसे अपना आँचल छुड़ा लिया। तेजीसे भगाकर वह दरवाजेके पास चली गई—बाहर जाने को हैरान...

"देखो ! अगर तुम नंगी न हुईं...।" बर्मनजीने ललकारा अपनी भागती बीबीको—"तो मैं तुम्हें बीबी न कहकर 'माता' कहूँगा।"

"मैं नंगी नहीं हूँगी। तुम चाहे जो कहो..."

"माँ कह दूँगा...!"

"कह दो...!" कहती वह कुलीना अपनी लाज बचा, दासीके घरमें भाग गई...

"माँ ! माँ !" गुस्से से काँपकर बाबू बनवारीलालने प्रतिज्ञाकी—"आजसे तू मेरी औरत नहीं माँ हुई—जा !"

❀

इस घटनाके सातवें दिन बाबू बनवारीलालजी वर्मन बम्बईकी 'लस्टी फ़िल्म कं०' के स्टूडियोके एक बन्द कमरेमें मशहूर फ़िल्मस्टार मिस रेवासे बातें कर रहे थे—

"सचमुच !" मोहकतासे मुस्कराकर मोतीसे दाँत दिखाती हुई मिस रेवाने बर्मनजीसे पूछा—"सचमुच ! आपने अपनी बीबीको 'माँ' कह दिया—हमेशा के लिए ?"

"एकदम !" बर्मनजी ने खुशीसे जवाब दिया—"अब हमारी राय में कोई भी काँटा नहीं। न तो 'प्यूरीटन, कंजूस बाप और न असभ्य औरत। अब हम दोनों एक हो सकते हैं...।"

आँचल सरका, सीने का उभार दिखाती हुई मिस रेवा बोली—"मगर; स्टार होनेसे अब तो मेरे पचासों प्रेमी हैं—बम्बईके बड़े-बड़े करोड़पती। अब पुराने, कानपूरी दोस्तकी मुझे कोई खास जरूरत नहीं।"

"दोस्त नहीं डियर!" रेवाके गलेमें हाथ डालकर 'रोमियो' के स्वरमें बर्मनजीने कहा—"अब मेरा सब कुछ तुम्हारा है—तन, मन धन। जो चाहो सो सनम ले लो! अब हमारी शादी......

"रजिस्टर्ड...! जिसमें न पटने पर 'डायवोर्स' का चान्स दोनों पार्टी को बराबर रहे...।" लीला से नैन नचाकर रेवाने कहा।

"बेशक...' बर्मनजीने जवाब दिया—"प्रेममें जबरदस्ती मैं जरा भी नहीं चाहता। आह! सुन्दरी रेवा! तुम जैसी एड्रकेटेड पत्नी पा मैं धन्य हो जाऊँगा।"

"आधी सम्पत्ति पर मेरा हक होगा।"

"बेशक—क्यों नहीं—"अभी लिखता हूँ और आज ही रजिस्टरी करा देता हूँ—बस तो...?"

"बस डियर...!"

प्रेम (?) से उछलकर मिस रेवाने पूरी एक्टिंगसे बाबू बनवारी-लालको चूम लिया। 'लस्टी स्टूडियो' के बन्द कमरेमें दोनों 'अपटुडेट' प्रेमी एक दूसरेके बाहुपाशमें बँधकर सच्चे प्रेमकी गहरी साँसें मिन्टों तक लेते रहे...

और अब रेवा-बर्मन-प्रेम मोटरों में दौड़ने लगा। होटलोंमें नाचने लगा। सिनेमाघरोंमें लिपटने और थिएटरोंमें चूमने लगा..!

रेसके मैदानमें भी वे सभ्य प्रेमी (बाबू बनवारीलालके पोंग पिताके) रुपये दोनों हाथोंसे फूकने—हारने लगे।

इस तरह आधे रुपये अपने नाम बैंकमें जमा करा, बाकी विलासमें उड़ा, एक सालके अन्दर ही मिस महोदयाने मिस्टर बनवारीलाल बर्मन का दीवाला निकाल दिया!

अब, मोटरमें पट्रोल नहीं, होटलके बिल चुकानेको रुपये नहीं, बर्मनजीके लिये—'एड्रकेटेड वाइफ' के मनमें मुहब्बत भी नहीं! एक यारका बेड़ा पार होते ही मिस साहिबाने दूसरा शिकार तैयार कर

लिया और तुरन्त ही बर्मनजीको 'बे-कार' करार दे 'डायवोर्स' दे दिया...!

* * *

और नई रोशनी के विद्वान् बर्मनजीके व्यवहारसे कानपुर कर्नलगंजका एक-एक व्यक्ति नाराज था। जिस दिन लोगोंको साध्वी पत्नीके प्रति उनका दुर्व्यवहार और "माता" बनानेवाली बात मालूम हुई उसी दिन से सारे मुहल्लेके लोग उस कुलीनाको "माँ! माँ!' कहने लगे!

अब वह युवती माता पूरी ब्रह्मचारिणी बनकर, सेवा करने लगी—अपने ससुरके पुराने मकानवाले ठाकुरजीकी, घरकी गऊकी और मुहल्लेके बच्चोंकी—रोगियोंकी! उसका व्रत और निष्ठा देख लोग उसके पिता और स्वर्गीय ससुरके पुण्यकी प्रशंसा करते और निन्दा करते उस "अंग्रेजी पढ़े उल्लूकी जिसने ऐसे कोहेनूरको न पहचाना!"

मगर बर्मनजीकी निरक्षरा पत्नीके मनमें अपने पतिके विरुद्ध कोई शिकायत नहीं। बल्कि पतिके कारण ठाकुरजीकी सेवाका सौभाग्य पानेका गर्व ही उसके हृदयमें रहा! मुहल्लेके बच्चे जब माँ! माँ! पुकारते हुए उस साध्वीको घेर लेते तब मारे प्रेमके वह गद्‌गद हो जाती!

मन्दिरमें पूजाकर सूर्यदेवको अर्घ चढ़ानेके लिए, एक दिन ज्योंही वह कुलीना माता बाहर निकली त्योंही किसी काले कुष्ठ रोगी ने "माँ! माँ! मुझे क्षमा करो!" पुकारकर उसके पूत पदों को पकड़ लिया...

वही थे हमारे नवशिक्षित 'पागल-प्रेमी बाबू बनवारीलाल बर्मन एम० ए०...सर्वस्व-हीन!"

सन्देह

लेखक—श्रीजयशंकर 'प्रसाद'
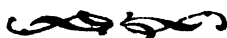
रामनिहाल अपना बिखरा हुआ सामान बाँधनेमें लगा था। जँगलेसे धूप आकर उसके छोटेसे शीशे पर तड़प रही थी। अपना उज्ज्वल आलोक-खण्ड वह छोटा-सा दर्पण बुद्धकी सुन्दर प्रतिमाको अर्पण कर रहा था। किन्तु प्रतिमा ध्यानामग्न थी। उसकी आँखें धूपसे चौंधियाती न थीं। प्रतिमाका शान्त गम्भीर मुख और भी प्रसन्न हो रहा था। किन्तु रामनिहाल उधर देखता न था। उसके हाथोंमें था एक कागजोंका बण्डल, जिसे सन्दूकमें रखने के पहले खोलना चाहता था। पढ़नेकी इच्छा थी, फिर भी न जाने हिचक क्यों रहा था और अपने मनको मना कर रहा था जैसे किसी भयानक वस्तु से बचने के लिये कोई बालकको रोकता हो।

बण्डल तो रख दिया, पर दूसरा बड़ा-सा लिफाफा खोल ही डाला। एक चित्र उसके हाथोंमें था और आँखोंमें थे आँसू। कमरेमें अब दो प्रतिमा थी। बुद्धदेव अपनी बिरागमहिमामें निमग्न। रामनिहाल रागशैल-सा अचल, जिसमेंसे हृदयका द्रव आँसुओंकी निर्झरिणी बनकर धीरे धीरे बह रहा था।

किशोरीने आकर हल्ला मचा दिया—"भाभी अरे भाभी! देखा नहीं तूने, देखन! निहाल बाबू रो रहे हैं। अरे तू चल भी।"

श्यामा वहाँ आकर खड़ी हो गयी। उनके आनेपर भी रामनिहाल उसी भावमें विस्मृत-सा अपनी करुणाधारा बहा रहा था। श्यामाने कहा—निहाल बाबू।

निहालने आँखें खोलकर कहा "क्या है ?...अरे मुझे क्षमा कीजिये।" फिर आंसू पोंछने लगा।

"बात क्या है, कुछ सुनूँ भी। तुम क्यों जानेके समय ऐसे दुखी होरहे हो ? क्या हम लोगोंसे कुछ अपराध हुआ है ?"

"तुमसे अपराध होगा यह क्या कह रही हो। मैं रोता हूँ इसमें मेरी ही भूल है। प्रायश्चित्त करनेका यह ढङ्ग ठीक नहीं, यह मैं धीरे-धीरे समझ रहा हूँ। किन्तु करूँ क्या, यह मन नहीं मानता।"

श्यामा जैसे सावधान हो गयी। उसने पीछे फिरकर देखा कि किशोरी खड़ी है। श्यामाने कहा—जा बेटी! कपड़े धूपमें फैले हैं वहीं बैठ।" किशोरी चली गयी। अब जैसे सुननेके लिये श्याम प्रस्तुत होकर एक चटाई खींचकर बैठ गयी। उसके सामने छोटीसी बुद्धि प्रतिमा सागवानकी सुन्दर मेजपर धूपके प्रतिबिम्बमें हँस रही थी। रामनिहाल कहने लगा—

"श्याम! तुम्हारा कठोर व्रत, वैधव्यका आदर्श देखकर मेरे हृदयमें विश्वास हुआ कि मनुष्य अपनी वासनाओंका दमन कर सकता है। किन्तु तुम्हारा अवलम्ब बड़ा दृढ़ है। तुम्हारे सामने बालकोंका झुण्ड हँसता, खेलता, लड़ता, झगड़ता रहता है। और तुमने जैसे बहुतसी देवप्रतिमाएँ शृङ्गारसे सजाकर हृदयकी कोठरीको मन्दिर बना दिया है। किन्तु मुझको वह कहाँ मिलता। भारतके भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें छोटा-मोटा व्यवसाय, नौकरी और पेट पालने की सुविधाओंको खोजता हुआ जब तुम्हारे घरमें आया तो मुझे विश्वास हुआ कि मैंने घर पाया। मैं जबसे संसारको जानने लगा तभीसे मैं गृहहीन था। मेरा सन्दूक और ये थोड़ेसे सामान जो मेरा उत्तराधिकारका अंश था, अपनी पीठपर लादे हुए मैं घूमता रहा। ठीक उसी तरह जैसे कंजर अपनी गृहस्थी टट्टूपर लादे हुए घूमता है।

मैं चतुर था। इतना चतुर जितना मनुष्यको न होना चाहिये, क्योंकि

मुझे विश्वास हो गया है कि मनुष्य अधिक चतुर बनकर अपनेको अभागा बना लेता है और भगवानकी दया से वंचित हो जाता है।

मेरी महत्वाकांक्षा, मेरे उन्नतिशील विचार मुझे बराबर दौड़ाते रहे। मैं अपनी कुशलतासे अपने भाग्यको धोखा देता रहा। वह भी मेरा पेट भर देता था। कभी कभी मुझे ऐसा मालूम होता कि यह दाँव बैठा कि मैं अपने आप पर विजयी हुआ। और मैं सुखी होकर, सन्तुष्ट होकर चैनसे संसारके एक कोनेमें बैठ जाऊँगा। किन्तु वह मृगरीचिका थी।

मैं जिनके यहाँ नौकरी अबतक करता रहा वे लोग बड़े ही सुशिक्षित और सज्जन हैं। मुझे मानते भी बहुत हैं। तुम्हारे यहाँ घरका-सा सुख है। किन्तु यह सब मुझे छोड़ना पड़ेगा ही।" इतनी बात कहकर रामनिहाल चुप हो गया।

"तो तुम कामकी एक बात न कहोगे। व्यर्थ ही इतनी ..." श्यामा और कुछ कहना चाहती थी कि उसे रोककर रामनिहाल कहने लगा—"तुमको मैं अपना शुभचिन्तक, मित्र और रक्षक समझता हूँ, फिर तुमसे न कहूँगा तो यह भार कबतक ढोता रहूँगा। लो सुनो। यह चैत है न? हाँ ठीक! कार्त्तिक की पूर्णिमा थी। मैं कामकाज से छुट्टी पाकर संध्या की शोभा देखने के लिये दशाश्वमेध घाट पर जाने के लिये तैयार था कि ब्रजकिशोर बाबूने कहा—

'तुम तो गंगा किनारे टहलने जाते ही हो। आज मेरे सम्बन्धी आ गये हैं इन्हें भी एक बजरेपर बैठकर घुमाते आओ। मुझे आज छुट्टी नहीं है।"

मैंने स्वीकार कर लिया। आफिसमें बैठा रहा। थोड़ी देरमें भीतरसे एक पुरुषके साथ एक सुन्दरी स्त्री निकली और मैं समझ गया कि मुझे इन्हीं लोगोंके साथ जाना होगा। ब्रजकिशोर बाबू ने कहा—'मान-मन्दिर घाटपर बजरा ठीक है। निहाल आपके साथ जा रहे हैं। कोई

असुविधा न होगी। इस समय मुझे क्षमा कीजिये। आवश्यक काम है।"

पुरुषके मुँहपर की रेखाएँ कुछ तन गयीं। स्त्रीने कहा "अच्छा है। आप अपना काम कीजिये। हम लोग तबतक घूम आते हैं।"

हम लोग मानमन्दिर पहुँचे। बजरेपर चाँदनी बिछी थी। पुरुष—'मोहन' बाबू जाकर ऊपर बैठ गये। पैंड़ी लगी थी। मनोरमाको चढ़नेमें जैसे डर लग रहा था। मैं बजरेके कोनेपर खड़ा था। हाथ बढ़ाकर मैंने कहा, आप चले आइये कोई डर नहीं। उसने हाथ पकड़ लिया। ऊपर आते ही मेरे कानमें धीरेसे उसने कहा, मेरे पति पागल बनाये जा रहे हैं। कुछ कुछ हैं भी। तनिक सावधान रहियेगा। नावकी बात है।"

मैंने कह दिया, 'कोई चिन्ता नहीं।' किन्तु ऊपर जाकर बैठ जानेपर भी मेरे कानों के समीप उस सुन्दर मुखका सुरभित निश्वास अपनी अनुभूति दे रहा था। मैंने मनको शान्त किया। चाँदनी निकल आयी थी। घाटोंपर आकाशदीप जल रहे थे। और गंगाकी धारामें भी छोटे-छोटे दीपक बहते हुए दिखाई देत थे।

मोहन बाबूकी बड़ी बड़ी गोल आँखें और भी फैल गयीं। उन्होंने कहा 'मनोरमा, देखो यह दीपदानका क्या अर्थ है, तुम समझती हो?'

'गंगाजीकी पूजा, क्या' मोनरमा ने कहा।

"यही तो मेरा और तुम्हारा मतभेद है। जीवनके लघु दीपकको अनन्तताकी धारामें बहा देने का यह संकेत है। आह! कितनी सुन्दर कल्पना! कहकर मोहन बाबू जैसे उच्छ्वसित हो उठे। उनकी शारीरिक चेतनता मानसिक अनुभूतिसे मिलकर उत्तेजित हो उठी। मनोरमाने मेरे कानोंमें धीरेसे कहा देखा न आपने!"

मैं चकित हो रहा था। बजरा पंचगंगा घाटके समीप पहुँच गया था। तब हँसते हुए मनोरमाने अपने पतिसे कहा—'और यह बाँसोंमें जो टँगे हुए दीपक हैं उन्हें आप क्या कहेंगे?'

तुरन्त ही मोहनबाबूने कहा' आकाश भी असीम है न! जीवन-दीप को उसी ओर जानेके लिये यह भी संकेत है। फिर हांफते हुए उन्होंने कहना आरम्भ किया—'तुम लोगोंने मुझे पागल समझ लिया है यह मैं जानता हूँ। ओह! संसारके विश्वासघातकी ठोकरोंने मेरे हृदयको विक्षिप्त बना दिया है। मुझे उससे विमुख कर दिया है। किसीने मेरे मानसिक विप्लवोंमें मुझे सहायता नहीं दी। मैं ही सबके लिये मरा करूँ। यह सब मैं नहीं सह सकता। मुझे अकपट प्यारकी आवश्यकता है। जीवनमें वह कभी नहीं मिला! तुमने भी मनोरमा! तुमने भी मुझे.......'

मनोरमा घबरा उठी थी। उसने कहा 'चुप रहिये आपकी तबियत बिगड़ रही है, शान्त हो जाइये!'

'क्यों शान्त हो जाऊँ? रामनिहालको देखकर चुप रहूँ। वह जा जाय इसमें मुझे कोई भय नहीं। तुम लोग छिपाकर सत्यको छल क्यों बनाती हो?' मोहन बाबूके श्वासोंकी गति तीव्र हो उठी। मनोरमा ने हताश भावसे मेरी ओर देखा। वह चांदनी रातमें विशुद्ध प्रतिमा-सी निश्चेष्ट हो रही थी!

मैंने सावधान होकर कहा—'मांझी अब घूम चलो। कातिककी रात चाँदनीसे शीतल हो चली थी। नाव मानमन्दिरकी ओर घूम चली। मैं मोहन बाबूके मनोविकारके सम्बन्धमें सोच रहा था। कुछ देरतक चुप रहनेके बाद मोहन बाबू फिर अपने आप कहने लगे—

'ब्रजकिशोरको मैं पहचानता हूँ। मनोरमा उसने तुम्हारे साथ मिलकर जो षड्यन्त्र रचा है, मुझे पागल बना देनेका जो उपाय हो रहा है, उसे मैं समझ रहा हूँ। तो.......'

'ओह! आप चुप न रहेंगे? मैं कहती हूँ न! यह व्यर्थका सन्देह आप मनसे निकाल दीजिये। या मेरे लिये संखिया मंगा दीजिये। छुट्टी हो।'

स्वस्थ होकर बड़ी कोमलतासे मोहन बाबू कहने लगे, 'तुम्हारा अपमान होता है। सबके सामने मुझे यह बातें न कहनी चाहिये। यह अपराध है। मुझे क्षमा करो मनोरमा!' सचमुच मनोरमाके कोमल चरण मोहन बाबूके हाथमें थे। वह पैर छुड़ाती हुई पीछे खिसकी। मेरे शरीरसे उसका स्पर्श हो गया। वह क्षुब्ध और संकोचमें रमणी जैसे किसीका आश्रय पानेके लिये व्याकुल हो गयी थी। मनोरमाने दीनतासे मेरी ओर देखते हुए कहा, 'आप देखते हैं न!'

सचमुच मैं देख रहा था। गंगाकी घोर धारा पर बजरा फिसल रहा था। नक्षत्र बिखर रहे थे। और एक सुन्दरी युवती मेरा आश्रय खोज रही थी। अपनी सब लज्जा और अपमान लेकर वह दुर्बल सन्देह-भारसे पीड़ित स्त्री जब कहती थी कि 'आप देखते हैं न' तब वह मानो मुझसे प्रार्थना करती थी कि कुछ मत देखो, मेरा व्यंग्य उपहास देखनेकी वस्तु नहीं।

मैं चुप था। घाटपर बजरा लगा। फिर वह युवती मेरा हाथ पकड़कर पैड़ीपरसे सम्हलती हुई उतरी। और मैंने एक बार न जाने क्यों धृष्टता से मनमें सोचा कि 'मैं धन्य हूँ'। मोहन बाबू ऊपर चढ़ने लगे। मैं मनोरमाके पीछे-पीछे था। अपनेपर भारी बोझ डालकर धीरे धीरे सीढ़ियोंपर चढ़ रहा था।

उसने धीरेसे मुझसे कहा, 'रामनिहालजी, मेरी विपत्तिमें आप सहायता न कीजियेगा!' मैं अवाक् था।

श्यामाने एक बार गहरी दृष्टिसे रामनिहालको देखा। वह चुप हो गया। श्यामाने आशा भरे स्वरमें कहा, "आगे और भी कुछ है या बस!"

रामनिहालने सिर झुकाकर कहा, "हाँ और भी कुछ है।"

"वही कहो न!"

"कहता हूँ। मुझे धीरे धीरे मालूम हुआ कि ब्रजकिशोरबाबू यह

चाहते हैं कि मोहनलाल अदालतसे पागल मान लिये जायँ और ब्रज-किशोर उनकी सम्पत्तिके प्रबन्धक बना दिये जायँ, क्योंकि वे ही मोहनलालके निकट सम्बन्धी थे। भगवान् जानें इसमें क्या रहस्य है। किन्तु संसार तो दूसरेको मूर्ख बनानेके व्यवसायपर चल रहा है। मोहन अपने सन्देहके कारण पूरा पागल बन गया है। तुम जो यह चिट्ठियोंका बण्डल देख रही हो, वह मनोरमाका है।"

रामनिहाल फिर रुक गया। श्यामाने फिर तीखी दृष्टिसे उसकी ओर देखा। रामनिहाल कहने लगा, "तुमको भी सन्देह हो रहा है। सो ठीक ही है मुझे कुछ सन्देह हो रहा है, मनोरमा क्या मुझे इस समय बुला रही है?"

अब श्यामाने हँसकर कहा, "तो क्या तुम समझते हो कि मनोरमा तुमको प्यार करती है और वह दुश्चरित्रा है? छिः! रामनिहाल, यह तुम क्या सोच रहे हो? देखूँ तो तुम्हारे हाथमें यह कौनसा चित्र है, क्या मनोरमाका ही?" कहते कहते श्यामाने रामनिहालके हाथसे चित्र ले लिया। उसने आश्चर्य भरे स्वरमें कहा, "अरे यह तो मेरा ही है? तो क्या तुम मुझसे प्रेम करने का लड़कपन करते हो? वाह! यह अच्छी फाँस लगी है तुमको। मनोरमा तुमको प्यार करती है और तुम मुझको। मनके विनोदके लिये तुमने अच्छा साधन जुटाया। तभी कायरोंकी तरह यहाँसे बोरिया-बँधना लेकर भागनेकी तैयारी कर ली है।"

रामनिहाल हतबुद्धि अपराधी-सा श्यामाको देखने लगा। जैसे उसे कहीं भागनेकी राह न हो। श्यामा दृढ़ स्वरमें कहने लगी—

"निहाल बाबू! प्यार करना बड़ा कठिन है। तुम इस खेलको नहीं जानते। इसके चक्करमें पड़ना भी मत। हाँ, एक स्त्री तुमको अपनी सहायताके लिये बुला रही है। जाओ उसकी सहायता करके लौट आओ। तुम्हारा सामान यहीं रहेगा। तुमको मेरी संरक्षताकी आवश्य-कता है। उठो। नहा धो लो। जो ट्रेन मिले उससे पटने जाकर

ब्रजकिशोरकी चालाकियोंसे मनोरमाकी रक्षा करो। और फिर मेरे यहाँ चले आना। यह सब तुम्हारा भ्रम था। सन्देह था।"

रामनिहाल धीरेसे उठकर नहाने चला गया।

लाड़ली

लेखिका—श्रीमती पार्वती देवी

"बताऊँ तुम मुझे कितना भाते हो?"

"हाँ।"

"जितना चकोर चकोरी को, चन्द्रमा कमलिनी को, प्रेमी प्रेमिका को, जाड़े की आग वस्त्रहीन को।"

"ओहो, तुम्हारे मुँह से तो कवितामय शब्द निकलने लगे!"

"संगति का कुछ असर आ ही जाता है।"

"किन्तु मैं तो कवि नहीं हूँ।"

"लाइन नहीं बाँचते तो क्या हुआ, दिलमें सरसता तो है न!"

"मैं तो यह भी नहीं जानता था।"

"अब तो जान गये?"

"हाँ।"

"किन्तु गर्व न करना।"

"तुम्हारी शिक्षा याद रखने की चेष्टा करूँगा।"

इस प्रकार की बातें रेखा अपने पति के साथ कर रही थी। धीरे-धीरे प्रेमावेशमें नव-दम्पति ने रात के बारह बजा दिये; किन्तु बातों का ताँता न टूटा। पति ने पूछा,—क्यों प्रिये, इधर कई दिनों से गंगा किनारे का कोई हाल नहीं सुनाया।

रेखा ने कहा,—क्या सुनाऊँ, संसार में स्त्री होना भी एक पाप है। घाट पर जाती हूँ, पुरुष-मंडली चील की तरह मँड़राने लगती हैं। मैं तो वहाँ इस तरह दिखायी पड़ती हूँ जैसे गीधों के बीच में मांस का टुकड़ा।

पतिने हँसकर हृदय से लगा लिया।

रेखा बोली—वहाँ से चलती हूँ तो घर तक पहुंचानेवाले नौकर मुफ्त मिल जाते हैं।

पति ने कहा—यह भी भाग्य की बात है।

रेखा—बनो नहीं, क्योंकि लज्जा के मारे आँखों से रास्ता भी दिखायी नहीं पड़ता। एक आदमी तो ऐसा है जो हाथ धोकर पीछे पढ़ गया है।

माँ-बाप का लाड़ला मोहन बीस साल की अवस्था में माता-पिता का देहान्त होने के कारण दो लाख की सम्पत्ति का मालिक बन बैठा। वह काशी का रहनेवाला था। घर में वह था और उसकी रूपवती स्त्री। वह प्रति दिन सबेरे पाँच बजे उठता और शौचादि से निवृत्त होकर गंगातट पर पहुँच जाया करता था। वहाँ पूरे तीन घंटे तक अपनी नौकरी बजाता, बाद घर लौटकर कमाऊ युवक की भाँति ठाट से नहाता-धोता और भोजन करके आराम करता। शामको चार बजे फिर घर से निकल पड़ता और रात के १२ बजे से पहले न लौटता। संक्षेप में यही उसकी दिनचर्य्या थी।

उसकी आदतें माता को पसन्द न थीं। कभी कभी वह नम्र भाव

से कह बैठती,—'कहाँ जाते हो, बैठो कोई पुस्तक पढ़कर सुनाओ
मोहन कहता,—'इतनी फुरसत नहीं है।' उत्तर पाकर माता चुप
हो जाती।

इधर कई दिनों से उसे सबेरे घाटों पर अधिक देर तक हाजिरी
देनी पड़ती है। गंगा-स्नान करनेवाली सुन्दरी युवतियों पर निर्निमेष
दृष्टि लगा रखना, किसी किसी युवती को उसके घर तक पहुँचा आना
ही उसका धन्धा था। इसमें उसका यही स्वार्थ था कि सौन्दर्य-रसपान
करके उसकी आँखें सुख का अनुभव करती थीं।

माघ महीने की अमावास्या के दिन घाटों पर खासी भीड़ जमा थी,
कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी, फिर भी मोहन ठीक समय पर घोसला-
घाट पर पहुँच गया। उसके चेहरे से जाहिर हो रहा था कि वह किसी
की गहरी प्रतीक्षा में है। उस प्रतीक्षा में रहने के कारण ही शायद
वह आज अपने कर्त्तव्य का ठीक ठीक पालन नहीं कर रहा है। बहुत
सी स्त्रियाँ आयीं और स्नान करके अपने अपने घर चली गयीं, पर
उसने आज एक को भी उसके घर तक न पहुंचाया। किन्तु पहले
कभी उसने अपने काम में एसी त्रुटि नहीं की थी। बड़ी देर तक
प्रतीक्षा करने के बाद एक युवती दिखायी पड़ी। मोहन का हृदय-कमल
खिल उठा। उसकी छाती धक्-धक् करने लगी। वह तृषित नेत्रों से
उसकी ओर देखने लगा। युवती भी एक बार मर्म भरी दृष्टि से
उसकी ओर देखती हुई घाट पर चली गयी। जान पड़ता है कि मोहन
इसी रमणी-रत्न की ताक में खड़ा था।

जब तक वह मोहनी मूर्त्ति घाट पर रही, मोहन चकोर की भाँति
टक लगाये उसकी ओर देखता रहा। किन्तु जब वह स्नान करके घर
की ओर चली तो मोहन भी चल पड़ा। कभी वह उससे चार हाथ
आगे निकल जाता और कभी दो हाथ पीछे। आज वह किसी खास
इरादे से आया था। रह-रहकर साहस करके चलते ही चलते वह

उसके पास पहुँच गया, किन्तु हिम्मत न पड़ती। इसी प्रकार की हिच-किचाहट में युवती अपने मकान के पास पहुँच गयी। दरवाजा बन्द करते समय उसने एक बार फिर मोहन की ओर देखा और उसने भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। उसकी उस शरारत से भरी चितवन में अपूर्व मादकता थी, विचित्र आकर्षण था। चाहे वह आकर्षण औरों के लिए न रहा हो, पर मोहन के लिए तो अवश्य था।

बेचारा मोहन थोड़ी देर तक काठ के उल्लू की तरह उस मकान के सामने चक्कर काटता रहा; उसके बाद निराश होकर घर लौट आया। सच है! सौन्दर्य स्वर्गीय पदार्थ होता हुआ भी उसमें अमृत और विष दोनों भरा हुआ है। तभी तो तिलोत्तमा, रम्भा, उर्वशी, मेनका आदि की गुणावलियों से ग्रन्थों के पन्ने रँगे पड़े हैं। तभी तो सौन्दर्य के कृपा-कटाक्ष पर बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि समाधि छोड़कर अपनी तपस्याओं का फल उसके चरणों पर अर्पित करने में तनिक भी संकुचित नहीं हुए। यौवन का यह सौन्दर्य मोक्षदाता भी है और नरक में घुसेड़नेवाला भी। सौन्दर्य के आगे संसार हाथ पसारकर उससे मिलने की भीख माँगता रहता है। किन्तु क्या मोहन सौन्दर्य्योपासक है? नहीं। फिर क्या है? इसका निर्णय पूरी कहानी पढ़ने के बाद पाठकगण स्वयं करें। मैं इतना ही कहूँगा कि सौन्दर्य्योपासक की मनोवृत्ति बहुत ही उच्चकोटि की हुआ करती है, इस तरह की तुच्छ नहीं।

रेखा अनुपम सुन्दरी थी। अच्छी पढ़ी-लिखी थी। बड़ी भली थी। पर चुलबुलापन उसमें बहुत था। कितने ही अनर्गल कामों में उसका खूब जी लगता था। यही कारण है कि वह हृदय से चाहती थी कि मोहन कुछ बोले; किन्तु अभागे मोहन की जबान ही नहीं खुलती थी।

एक दिन वह अलवान ओढ़े स्नान करके घर आ रही थी। मोहन उसके पीछे लगा हुआ था। रेखा ने सोचा, बेदाम-कौड़ी का घर तक

पहुँचानेवाला नौकर अच्छा मिला। नित्य की भाँति आज भी मोहन तेजी से चलकर उसके आगे निकल जाना चाहता था। ज्यों ही वह उसके पास पहुँचा, त्यों ही सामने की एक भीड़ ने आकर दोनों की गति में बाधा डाल दी। बचाने की चेष्टा करने पर भी मोहन के शरीर से रेखा को हलका-सा धक्का लग गया। रेखा ने घूमकर पीछे की ओर देखा। उसके चेहरे पर मुसकुराहट दिखायी पड़ी। मोहन कृतकृत्य हो गया। उसने रेखा की बाहँ में चुटकी से दबाया। कुछ कहा भी, पर रेखा उसे न सुन सकी। रेखा कुछ नहीं बोली। दोनों भीड़ से पार हो गये।

रेखा ने अपने मकान के दरवाजे के पास पहुँचकर पीछे की ओर देखा। मोहन बिलकुल करीब में था। उसके चेहरे का प्रसन्नभाव देखकर मोहन ने धीमे स्वर में पूछा,—"आ सकता हूँ ?"

रेखा बिना कुछ उत्तर दिये भीतर चली गयी और एक किवाड़ बन्द करके कनखियों से मोहन की ओर देखने लगी। निगाहें चार होते ही उसने आँख से कुछ संकेत किया। मोहन गद्गद चित से दो फलाँग में मकान के भीतर चला गया। रेखा ने उसके भीतर घुसते ही शीघ्रता से दरवाजा बन्द कर लिया। सोचा, जाल में पच्छी फंस गया। मोहन को एक कमरे में ले जाकर रेखा ने पूँछा,—'आप कई दिनों से मेरे पीछे इतना कष्ट क्यों उठा रहे हैं ?'

मोहन—यह भी बतलाने की जरूरत है ?

रेखा—जरूर। मैं अन्तर्यामी नहीं हूँ।

मोहन—किन्तु मेरे दिल की बात आपसे छिपी नहीं है।

इतना कहकर मोहन उसे आलिंगन करना ही चाहता था कि रेखा का पति उसपर टूट पड़ा। रेखा तो एक ओर हटकर खड़ी हो गयी और उसके पहलवान पति का मोहन शिकार बना।

रेखा अपने पति से वादा करके गयी थी कि आज जरूर चिड़िया

फँसा लाऊँगी। इसी से शम्भू बड़ी ही उत्कंठा के साथ इस घड़ी की प्रतिक्षा कर रहा था। शम्भू के आक्रमण करते ही मोहन हक्का-बक्का सा हो गया। शम्भू ने लात-घूसे से उसकी खूब मरम्मत की। सोने की कलाई-घड़ी और गले की सोने की सिकड़ी छीन ली। सब कपड़े भी उतरवा लिये; यहाँ तक कि उसकी धोती खुलकर जमीन पर गिर गयी। शम्भू ने कहा—'बोल, फिर कभी दूसरे की बहू-बेटियों पर बुरी नजर डालेगा?'

रेखा खड़ी हँस रही थी। मोहन पर अधिक मार पड़ते देखकर मर जाने की आशंका से उसने शम्भू को पकड़ लिया। मोहन मौका पाते ही नंगे बदन निकल भागा। उसे धोती की भी सुध न रही। सोचा,—'जान बची लाखों पाया।' सड़क पर पहुँचते ही उसे धोती का होश हुआ। उस समय उसकी क्या गति हुई होगी, पाठक स्वयं अनुमान कर लें। लोगों ने समझा पागल है।

रेखा ने विजयगर्वोन्मत्त होकर शम्भू से कहा,—हलुआ-पूड़ी खाने का यह अच्छा तरीका है। आज मैंने एक आदमी का जीवन सुधारकर गहरा पुण्य कमा लिया। क्या मेरी बहनें मेरा अनुकरण करेंगी?

शम्भू ने कहा,—यदि ऐसा ही होता तो रोना किस बात का था, प्रिये!

पाठक गण! इसे कल्पना-प्रसूत न समझें। यह सत्य घटना है। इसी से इसमें किसी तरह की रोचकता लाने का प्रयत्न नहीं किया गया है।

गृह-नीति

लेखक—स्वर्गीय श्री प्रेमचन्द

जब माँ बेटे से बहू की शिकायतों का दफ्तर खोल देती है और यह सिलसिला किसी तरह खत्म होते नजर नहीं आता तो बेटा उकता जाता है और दिन भर की थकावट के कारण कुछ झुँझलाकर माँ से कहता है—

'तो आखिर तुम मुझ से क्या करने को कहती हो अम्मा ? मेरा काम स्त्री को शिक्षा देना तो नहीं। यह तो तुम्हारा काम है। तुम उसे डाटो, मारो, जो सजा चाहे दो। मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की और क्या बात हो सकती है कि तुम्हारे प्रयत्न से वह आदमी बन जाय। मुझसे मत कहो कि सलीका नहीं है, तमीज़ नहीं है, बे-अदब है। उसे डाटकर सिखाओ।'

माँ—वाह, मुँह से बात तो निकलने नहीं देती, डाटूँ तो मुझे नोच ही खाय। उसके सामने अपनी आबरू बचाती फिरती हूँ कि किसी के मुँह पर मुझे अनुचित शब्द न कह बैठे।

बेटा—तो फिर इसमें मेरी क्या खता है; मैं तो उसे सिखा नहीं देता कि तुमसे बे-अदबी करे।

माँ—तो और कौन सिखाता है ?

बेटा—तुम तो अन्धेर करती हो, अम्माँ !

माँ—अन्धेर नहीं करती, सत्य कहती हू। तुम्हारी ही शह पाकर उसका दिमाग़ बिगड़ गया है। जब वह तुम्हारे पास जाकर टिसवे बहाने लगती है, तो कभी तुमने उसे डाँटा, कभी समझाया कि तुझे अम्माँ का अदब करना चाहिए। तुम तो उसके खुद गुलाम हो गए हो। यह भी

समझती है कि मेरा पति कमाता है, फिर मैं क्यों बेगानी बनूँ, क्यों किसी से दबूँ। मर्द जब तक शह न दे, औरत का इतना गुर्दा हो ही नहीं सकता।

बेटा—तो क्या मैं उससे कह दूँ कि मैं कुछ नहीं कमाता, बिलकुल निखट्टू हूँ। क्या तुम समझती हो, तब वह मुझे जलील न समझेगी? हर एक पुरुष चाहता है कि उसकी स्त्री उसे कमाऊ, योग्य, तेजस्वी समझे और सामान्यतः वह जितना है उससे बढ़कर अपने को दिखाता है। मैंने कभी ऐसी नादानी नहीं की, कभी स्त्री के सामने डींग नहीं मारी, लेकिन स्त्री की दृष्टि में अपना सम्मान खोना तो कोई भी न चाहेगा।

माँ—तुम कान लगाकर और ध्यान देकर और मीठी मुसकराहट के साथ जब उसकी बातें सुनोगे तो वह क्यों न शेर होगी। तुम खुद चाहते हो कि स्त्री के हाथों मेरा अपमान कराओ। मालूम नहीं मेरे किन पापों का तुम मुझे यह दण्ड दे रहे हो। किन अरमानों से, कैसे-कैसे कष्ट झेलकर मैंने तुम्हें पाला। खुद नहीं खाया, तुम्हें खिलाया। मेरे लिए तुम उस मरनेवाले की मुहब्बत की निशानी थे, और मेरी सारी अभिलाषाओं के केन्द्र तुम्हारी शिक्षा पर मैंने अपने हजारों के आभूषण होम कर दिये। विधवा के पास दूसरी कौन-सी निधि थी। इसका तुम मुझे यह पुरस्कार दे रहे हो।

बेटा—मेरी समझ में ही नहीं आता कि आप मुझसे चाहती क्या हैं? आपके उपकारों को मैं कब मेट सकता हूँ। आपने मुझे केवल शिक्षा नहीं दिलाई, मुझे जीवन-दान दिया, मेरी सृष्टि की। अपने गहने ही नहीं होम दिये, अपना रक्त तक पिलाया। अगर मैं सौ बार अवतार लूँ तो भी इसका बदला नहीं चुका सकता। मैं अपने जान में आपकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करता, यथासाध्य आपकी सेवा में कोई बात उठा नहीं रखता। जो कुछ पाता हूँ लाकर आपके हाथों पर रख देता

हूँ, और आप मुझसे क्या चाहती हैं, और मैं कर ही क्या सकता हूँ ? ईश्वर ने हमें और आपको और सारे संसार को पैदा किया उसका हम उसे क्या बदला देते हैं ? क्या बदला दे सकते हैं ? उसका नाम भी तो नहीं लेते ! उसका यश भी तो नहीं गाते ! इससे क्या उसके उपकारों का भार कुछ कम हो जाता है ? माँ के बलिदानों का प्रतिशोध कोई बेटा नहीं कर सकता, चाहे वह भूमण्डल का स्वामी ही क्यों न हो। ज्यादा से ज्यादा मैं आपकी दिलजोई ही तो कर सकता हूँ और मुझे याद नहीं आता कि मैंने कभी आपको असन्तुष्ट किया हो।

माँ—तुम मेरी दिलजोई करते हो ? तुम्हारे घर में मैं इस तरह रहती हूँ, जैसे कोई लौंडी। तुम्हारी बीबी कभी मुझसे बात भी नहीं पूछती। मैं भी कभी बहू थी। रात को घण्टे भर सास की देह दबाकर, उनके सिर में तेल डालकर, उन्हें दूध पिलाकर तब बिस्तर पर जाती थी। तुम्हारी स्त्री नौ बजे अपनी किताबें लेकर अपनी सहनची में जा बैठती है, दोनों खिड़कियाँ खोल देती है और मजे से हवा खाती है। मैं मरूँ या जीऊँ, उससे मतलब नहीं ! इसीलिए मैंने तुम्हें पाला था ?

बेटा—तुमने मुझे पाला था तो यह सारी सेवा मुझसे लेनी चाहिए थी। मगर तुमने मुझसे कभी नहीं कहा। मेरे अन्य मित्र भी हैं। उनमें भी मैं किसी को माँ की देह में मुक्कियाँ लगाते नहीं देखता। आप मेरे कर्त्तव्य का भार मेरी स्त्री पर क्यों डालती हैं। यों अगर वह आपकी सेवा करे तो मुझसे ज्यादा प्रसन्न और कोई न होगा। मेरी आँखों में उसकी इज्जत दूनी हो जायगी। शायद उससे और ज्यादा प्रेम करने लगूँ। लेकिन अगर वह आपकी सेवा नहीं करती तो आपका उससे अप्रसन्न होने का कोई कारण नहीं है। शायद उसकी जगह यदि मैं होता तो मैं भी ऐसा ही करता। सास मुझे अपनी लड़की की तरह प्यार करती, तो मैं भी उसके तलुए सहलाता, इसलिए नहीं कि वह मेरे पति की माँ होती, बल्कि वह मुझसे मातृवत् स्नेह करती, मगर मुझे खुद यह

बुरा लगता है कि बहू सास के पाँव दबाये । कुछ दिन पहले स्त्रियाँ पति के पाँव दबाती थीं। आज भी उस प्रथा का लोप नहीं हुआ है। लेकिन मेरी पत्नी मेरे पाँव दबाये तो मुझे ग्लानि होगी। मैं उससे कोई ऐसी खिदमत नहीं लेना चाहता, जो मैं उसकी भी न कर सकूँ। यह रस्म उस जमाने की यादगार है, जब स्त्री पति की लौंडी समझी जाती थी। अब पत्नी और पति दोनों बराबर हैं। कम से कम मैं ऐसा ही समझता हूँ।

माँ—वही तो मैं कहती हूँ कि तुम्हीं ने उसे ऐसी-ऐसी बातें पढ़ाकर शेर किया है। तुम्हीं मुझसे बैर साध रहे हो। ऐसी निर्लज्ज, ऐसी बदजबान, ऐसी टर्रा, फूहड़ छोकरी संसार में न होगी। घर में अक्सर महल्ले की बहिनें मिलने आती रहती हैं। यह राजा की बेटी न जाने किन गँवारों में पली है कि किसी का भी आदर-सत्कार नहीं करती। कमरे से निकलती तक नहीं। कभी-कभी जब वह खुद उसके कमरे में चली जाती हैं तो भी यह गधी चारपाई से नहीं उठती। प्रणाम तक नहीं करती, चरण छूना तो दूर की बात है।

बेटा—वह देवियाँ तुमसे मिलने आती। तुम्हारे उनके और उनके बीच में न जाने क्या बातें होती हों। अगर तुम्हारी बहू बीच में आ कूदे तो मैं उसे बदतमीज कहूँगा। कम से कम मैं तो कभी पसन्द न करूँगा कि जब मैं अपने मित्रों से बातें कर रहा हूँ, तो तुम या तुम्हारी बहू वहाँ जाकर खड़ी हो जाय। स्त्री भी अपनी सहेलियों के साथ बैठी हो तो मैं वहाँ बिना बुलाए न जाऊँगा। यह तो आजकल का शिष्टाचार है।

माँ—तुम तो हर बात में उसी का पच्छ करते हो बेटा, न जाने उसने कौन सी जड़ी सुँघा दी है तुम्हें। यह कौन कहता है कि वह हम लोगों के बीच में आ कूदे। लेकिन बड़ों का उसे कुछ तो आदर-सत्कार करना ही चाहिए।

बेटा—किस तरह ?

माँ—जाकर अंचल से उनके चरण छुए, प्रणाम करे, पान खिलाए, पङ्खा झले। इन्हीं बातों से बहू का आदर होता है, लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। नहीं तो सब की सब यही कहती होंगी कि बहू को घमण्ड हो गया है। किसी से सीधे मुँह बात तक नहीं करती।

बेटा—(विचार करके) हाँ, यह अवश्य उसका दोष है। मैं उसे समझा दूँगा।

मां—(प्रसन्न होकर) तुमसे सच कहती हूँ बेटा, चारपाई से उठती तक नहीं, सब औरतें थुड़ी-थुड़ी करती हैं। मगर उसे तो शर्म जैसे छू ही नहीं गई। और मैं हूँ कि मारे शर्म के मरी जाती हूँ।

बेटा—यही मेरी समझ में नहीं आता कि तुम हर बात में अपने को उसके कृत्यों का जिम्मेदार क्यों समझ लेती हो। मुझपर दफ्तर में न जाने कितनी घुड़कियाँ पड़ती हैं, रोज ही तो जवाब तलब होता है, लेकिन तुम्हें उल्टे मेरे साथ सहानुभूति होती है। क्या तुम समझती हो अफ़सरों को मुझसे कोई बैर है, जो अनायास ही मेरे पीछे पड़े रहते हैं, या उन्हें उन्माद हो गया है जो अकारण ही मुझे काटने दौड़ते हैं। नहीं, इसका कारण यही है कि मैं अपने काम में चौकस नहीं हूँ। गल्तियाँ करता हूँ, सुस्ती करता हूँ, लापरवाही करता हूँ। जहाँ अफ़सर सामने से टला कि लगे समाचारपत्र पढ़ने, या ताश खेलने लगे। क्या उस वक्त हमें यह खयाल नहीं रहता कि काम पड़ा हुआ है और यह ताश खेलने का अवसर नहीं है, लेकिन कौन परवाह करता है। सोचते हैं, यह साहब डाँट ही तो बताएँगे, सिर झुकाकर सुन लेंगे, बाधा टल जायगी। और तुम मुझे दोषी समझकर भी मेरा पक्ष लेती हो, और तुम्हारा बस चले तो हमारे बड़े बाबू को मुझसे जवाब तलब करने के अभियोग में कालेपानी भेज दो।

माँ—(खिलकर) मेरे लड़के को कोई सजा देगा तो क्या मैं पान-फूल से उसकी पूजा करूँगी।

बेटा—हरेक बेटा अपनी माता से इसी तरह की कृपा की आशा रखता है और सभी माताएँ अपने लड़कों के ऐबों पर पर्दा डालती हैं। फिर बहुओं की ओर से क्यों उनका हृदय इतना कठोर हो जाता है, यह मेरी समझ में नहीं आता। तुम्हारी बहू पर जब दूसरी स्त्रियाँ चोट करें तो तुम्हारे मातृस्नेह का यह धर्म है कि तुम उसकी तरफ से क्षमा माँगो, कोई बहाना कर दो, उनकी नजरों में उसे उठाने की चेष्टा करो। इस तिरस्कार में तुम क्यों उनसे सहयोग करती हो? तुम्हें क्यों उसके अप-मान में मजा आता है। मैं भी तो हरेक ब्राह्मण या बड़े-बूढ़े का आदर-सत्कार नहीं करता। मैं किसी ऐसे व्यक्ति के समाने सिर झुका ही नहीं सकता जिसपर मुझे हार्दिक श्रद्धा न हो। केवल सफेद बाल और सिकुड़ी हुई खाल और पोपला मुँह और झुकी हुई कमर किसी को आदर का पात्र नहीं बना देती और न जनेऊ या तिलक या पण्डित और शर्मा का उपाधि ही भक्ति की वस्तु है। मैं लकीर-पीटू सम्मान को नैतिक अप-राध समझता हूँ। मैं तो उसी का सम्मान करूँगा जो मनसा बाचा कर्मणा हर पहलू से सम्मान के योग्य है। जिसे मैं जनता हूँ कि मक्कारी और स्वार्थ-साधन और निन्दा के सिवा और कुछ नहीं करता, जिसे मैं जानता हू कि रिशवत और सूद तथा ख़ुशामद की कमाई खाता है, वह अगर ब्रह्मा की आयु लेकर भी मेरे सामने आए तो मैं उसे सलाम न करूँ। इसे तुम मेरा अहङ्कार कह सकती हो। लेकिन मैं मजबूर हूँ। जब तक मेरा दिल न झुके मेरा शिर भी न झुकेगा। मुमकिन है, तुम्हारी बहू के मन में भी उन देवियों की ओर से अश्रद्धा के भाव हों। उनमें से दो-चार को मैं भी जानता हूँ। हैं वह सब बड़े घर की, लेकिन सबके दिल छोटे। विचार छोटे। कोई निन्दा की पुतली है, तो कोई खुशामद में यकता; कोई गाली-गलौज में अनुपम। सभी रूढ़ियों की ग़ुलाम, ईर्षा-

द्वेष से जलने वाली। एक भी ऐसी नहीं जिसने अपने घर को नरक का नमूना न बना रक्खा हो। अगर तुम्हारी बहू ऐसी औरतों के आगे सिर नहीं झुकाती, तो मैं उसे दोषी नहीं समझता।

माँ—अच्छा अब चुप रहो बेटा, देख लेना तुम्हारी यह रानी एक दिन तुमसे चूल्हा न जलवाये और झाड़ू न लगवाये तो सही। औरतों को बहुत सिर चढ़ाना अच्छा नहीं होता। इस निर्लज्जता की भी कोई हद है कि बूढ़ी सास तो खाना पकाए और जवान बहू बैठी उपन्यास पढ़ती रहे!

बेटा—बेशक यह बुरी बात है और मैं हर्गिज नहीं चाहता कि तुम खाना पकाओ और वह उपन्यास पढ़े, चाहे वह उपन्यास प्रेमचंद ही के क्यों न हों। लेकिन यह भी तो देखना होगा कि उसने अपने घर कभी खाना नहीं पकाया। वहाँ रसोइया महाराज है। और जब चूल्हे के सामने जाने से उसके सिर में दर्द होने लगता है तो उसे खाना पकाने के लिए मजबूर करना उसपर अत्याचार करना है। मैं तो समझता हूँ, ज्यों-ज्यों हमारे घर की दशा का उसे ज्ञान होगा, उसके व्यवहार में आप ही आप इसलाह होती जायगी। यह उसके घरवालों की गलती है कि उन्होंने उसकी शादी किसी धनी घर में नहीं की। हमने भी यह शरारत की कि अपनी असली हालत उससे छिपाई और यह प्रकट किया कि हम पुराने रईस हैं। अब हम किस मुँह से यह कह सकते हैं कि तू खाना पका, या बरतन मांज, या झाड़ लगा। हमने उन लोगों से छल किया है और उसका फल हमें चखना पड़ेगा। अब तो हमारी कुशल इसी में है कि अपनी कुदशा को नम्रता, विनय और सहानुभूति से ढाँकें, और उसे अपने दिल को यह तसल्ली देने का अवसर दें कि बला से धन नहीं मिला, घर के आदमी तो अच्छे मिले। अगर यह तसल्ली भी हमने उससे छीन ली तो तुम्हें

सोचो कि उसको कितनी विदारक वेदना होगी। शायद वह हम लोगों की सूरत से घृणा करने लगे।

माँ—उसके घरवालों को सौ दफे गरज थी तब हमारे यहाँ व्याह किया। हम कुछ उनसे भीख माँगने गये थे!

बेटा—उनको अगर लड़के की गरज थी तो हमें धन और कन्या दोनों की गरज थी।

मा—यहाँ के बड़े-बड़े रईस हमसे नाता करने को मुँह के लाये हुए थे।

बेटा—इसीलिए कि हमने रईसों का स्वाँग बना रक्खा है। घर की असली हालत खुल जाय तो कोई बात भी न पूछे।

माँ—तो तुम्हारे ससुरालवाले ऐसे कहाँ के रईस हैं। इधर जरा वकालत चल गई तो रईस हो गये, नहीं तुम्हारे ससुर के बाप मेरे सामने चपरासीगिरी करते थे। और लड़की का यह दिमाग कि खाना पकाने में सिर में दर्द होता है। अच्छे-अच्छे घरों की लड़कियाँ गरीबों के घर आती हैं और घर की हालत देखकर वैसा ही बर्ताव करती हैं। यह नहीं कि बैठी अपने भाग्य को कोसा करें। इस छोकरी ने हमारे घर को अपना समझा ही नहीं।

बेटा—जब तुम समझने भी दो। जिस घर में घुड़कियाँ, गालियाँ और कटुताओं के सिवा और कुछ न मिले उसे अपना घर कौन समझे। घर तो वह है जहाँ स्नेह और प्यार मिले। कोई लड़की डोली से उतरते ही सास को अपनी माँ नहीं समझ सकती। माँ तभी समझेगी जब सास पहले उसके साथ मां का बर्ताव करे, बल्कि अपनी लड़की से ज्यादा प्रिय समझे।

मां—अच्छा अब चुप रहो। जी न जलाओ। यह जमाना ही ऐसा है कि लड़कों ने स्त्री का मुंह देखा और उसके गुलाम हुए। ये सब न जाने कौन सा मंतर सीखकर आती हैं। यह भी बहू-बेटी के

लच्छन हैं कि पहर दिन चढ़े सोकर उठें। ऐसी कुलच्छनी बहू का तो मुँह न देखे।

बेटा—मैं भी तो देर में सोकर उठता हूँ, अम्माँ! मुझे तो तुमने कभी नहीं कोसा?

माँ—तुम हर बात में उससे अपनी बराबरी करते हो।

बेटा—जो उसके साथ घोर अन्याय है, क्योंकि जब तक वह इस घर को अपना नहीं समझती, तब तक उसकी हैसियत मेहमान की है. और मेहमान की हम खातिर करते हैं, उसके ऐब नहीं देखते।

माँ—ईश्वर न करे किसी को ऐसी बहू मिले।

बेटा—तो वह तुम्हारे घर में रह चुकी।

माँ—क्या संसार में औरतों की कमी है?

बेटा—औरतों की कमी तो नहीं, मगर देवियों की कमी जरूर है।

माँ—नौज ऐसी औरत। सोने लगती है तो बच्चा चाहे रोते-रोते बेदम तक हो जाय, मिनकती तक नहीं। फूल सा बच्चा लेकर मैके गई थी, तीन महीने में लौटी तो बच्चा आधा भी नहीं है।

बेटा—तो क्या मैं यह मान लूँ कि तुम्हें उसके लड़के से जितना प्रेम है उतना उसे नहीं है? यह तो प्रकृति के नियम के विरुद्ध है। और मान लो वह निरमोहिन ही है तो यह उसका दोष है। तुम क्यों उसकी जिम्मेदारी अपने सिर लेती हो। उसे पूरी स्वतन्त्रता है, जैसे चाहे अपने बच्चे को पाले। अगर वह तुमसे कोई सलाह पूछे तो प्रसन्न-मुख से दे दो, न पूछे तो समझ लो उसे तुम्हारी मदद की जरूरत नहीं है। सभी माताएँ अपने बच्चे को प्यार करती हैं और वह अपवाद नहीं हो सकती।

माँ—तो मैं सब कुछ देखूँ और मुँह न खोलूँ। घर में आग लगते देखूँ और चुपचाप मुँह में कालिख लगाये खड़ी रहूँ।

बेटा—तुम इस घर को जल्द छोड़नेवाली हो, उसे बहुत दिन

रहना है, घर के हानि-लाभ की जितनी चिन्ता उसे हो सकती है, तुम्हें नहीं हो सकती। फिर मैं कर ही क्या सकता हूँ? ज्यादा से ज्यादा उसे डाँट बता सकता हूँ, लेकिन वह डाँट की परवाह न करे और तुकी-बेतुकी जवाब दे तो मेरे पास ऐसा कौन-सा साधन है, जिससे मैं उसे ताड़ना दे सकूँ?

माँ—तुम दो दिन न बोलो तो देवता सीधे हो जाँय, सामने नाक रगड़ें।

बेटा—मुझे इसका विश्वास नहीं है। मैं उससे न बोलूँगा, वह भी मुझसे न बोलेगी। ज्यादा पीछे पड़ूँगा तो अपने घर चली जायगी।

माँ—ईश्वर वह दिन लाए। मैं तुम्हारे लिए नई बहू लाऊँ।

बेटा—सम्भव है वह इसकी भी चची हो।

(सहसा बहू आकर खड़ी हो जाती है। माँ और बेटा दोनों स्तम्भित हो जाते हैं, मानों कोई बम-गोला आ गिरा हो। बहू रूपवती नाजुक मिजाज, गर्बीली रमणी है, जो मानो शासन करने के लिये ही बनी है। कपोल तम-तमाए हुए हैं, पर अधरों पर विष-भरी मुस्कान है और आँखों में व्यंग मिला परिहास।)

माँ—(अपनी झेंप छिपाकर) तुम्हें कौन बुलाने गया था?

बहू—क्यों, यहाँ जो तमाशा हो रहा है, उसका आनन्द मैं न उठाऊँ?

बेटा—माँ-बेटे के बीच में तुम्हें दखल देने का कोई हक नहीं है।

(बहू की मुद्रा सहसा कठोर हो जाती है।)

बहू—अच्छा आप जबान बन्द रखिये। जो पति अपनी स्त्री की निन्दा सुनता रहे, वह पति बनने के योग्य नहीं। वह पति-धर्म का क, ख, ग, भी नहीं जानता। मुझसे अगर कोई तुम्हारी बुराई करता, चाहे वह मेरी प्यारी मां ही क्यों न होती, तो मैं उसकी जबान पकड़ लेती। तुम मेरे घर जाते हो तो वहां तो जिसे देखती हूँ, तुम्हारी प्रशंसा

करता है। छोटे से बड़े तक गुलामों की तरह दौड़ते फिरते हैं। गर उनके बस में हो तो तुम्हारे लिए स्वर्ग के तारे तोड़ लावें। और नका जवाब मुझे यहां यह मिलता है कि बात-बात पर ताने-मेहने, रस्कार, बहिष्कार। मेरे घर तो तुमसे कोई नहीं कहता कि तुम देर में गों उठे, तुमने अमुक महोदय को सलाम क्यों नहीं किया, अमुक के रणों पर सिर क्यों नहीं पटका! मेरे बाबू जी कभी गवारा न करेंगे तुम उनकी देह पर मुक्कियां लगाओ, या उनकी धोती धोओ या हें खाना पकाकर खिलाओ। मेरे साथ यहां यह बर्ताव क्यों? मैं ां लौंडी बनकर नहीं आई हूँ, तुम्हारी जीवन-संगिनी बनकर आई । मगर जीवन-संगिनी का यह अर्थ तो नहीं कि तुम मेरे ऊपर सवार कर मुझे चलाओ। यह मेरा काम कि जिस तरह चाहूँ तुम्हारे साथ ने कर्तव्य का पालन करूँ। उसकी प्रेरणा मेरी आत्मा से होनी हिये, ताड़ना या तिरस्कार से नहीं। अगर कोई मुझे कुछ सिखाना हता है, तो मां की तरह प्रेम से सिखाये, मैं सीखूँगी। लेकिन कोई रदस्ती, मेरी छाती पर चढ़कर, अमृत भी मेरे कण्ठ में ठूँसना चाहे मैं ओठ बन्द कर लूँगी। मैं अब तक कब की इस घर को अपना मझ चुकी होती, अपनी सेवा और कर्तव्य का निश्चय कर चुकी होती, र यहाँ तो हर घड़ी, हर पल, मेरी देह में सुई चुभाकर मुझे याद लाया जाता है कि तू इस घर की लौंडी है, तेरा इस घर से कोई ता नहीं, तू सिर्फ गुलामी करने के लिये यहाँ लाई गई है, और मेरा खौलकर रह जाता है। अगर यही हाल रहा तो एक दिन तुम दोनों ी जान लेकर रहोगे।

माँ—सुन रहे हो अपनी चहेती रानी की बातें। वह यहां लौंडी कर नहीं, रानी बनकर आई हैं। हम दोनों उसकी टहल करने के ये हैं। उनका काम हमारे ऊपर शासन करना है। उसे कोई कुछ ने को न कहे। मैं खुद मरा करूँ। और तुम उसकी बातें कान

लगाकर सुनते हो। तुम्हारा मुँह कभी नहीं खुलता कि उसे डाँटो या समझाओ। थर-थर कापते रहते हो।

बेटा—अच्छा अम्माँ ठंढे दिल से सोचो। मैं इसकी बातें भी न सुनूँ तो कौन सुने? क्या तुम इसके साथ इतनी हमदर्दी भी नहीं देखना चाहती? आखिर बाबू जी जीवित थे तब वह तुम्हारी बातें सुनते थे या नहीं? फिर मैं अपनी बीबी की बातें सुनता हू तो कौन सी नई बात करता हूँ, और इसमें तुम्हारे बुरा मानने की कौन बात है?

माँ—हाय बेटा, तुम अपनी स्त्री के सामने मेरा अपमान कर रहे हो। इसी दिन के लिए मैंने तुम्हें पालपोस कर बड़ा किया था? क्यों मेरी छाती नहीं फट जाती?

(वह आँसू पोछती, आपे से बाहर, कमरे में निकल जाती है। स्त्री-पुरुष दोनों कौतुक-भरी आँखों से उसे देखते हैं, जो बहुत जल्द हमदर्दी में बदल जाती है।)

पति—माँ का हृदय......

स्त्री—माँ का हृदय नहीं, स्त्री का हृदय ....

पति—अर्थात्?

स्त्री—जो अन्त तक पुरुष का सहारा चाहता है, स्नेह चाहता है, और उसपर किसी दूसरी स्त्री का असर देखकर ईर्षा से जल उठता है।

पति—क्या पागलों की सी बातें करती हो।

स्त्री—यथार्थ कहती हूँ।

पति—तुम्हारा दृष्टिकोण बिलकुल गलत है और इसका तजरबा तुम्हें तब होगा, जब तुम खुद सास होगी।

स्त्री—मुझे सास बनना ही नहीं है। लड़का अपने हाथ-पाँव का हो जाय, ब्याह करे और अपना घर सँभाले। मुझे बहू से क्या सरोकार।

पति—तुम्हें यह अरमान बिलकुल नहीं है कि तुम्हारा लड़का योग्य हो, तुम्हारी बहू लक्ष्मी हो, और दोनों का जीवन सुख से कटे ?

स्त्री—क्या मैं माँ नहीं हूँ ?

पति—माँ और सास में क्या कोई अन्तर है ?

स्त्री—उतना ही जितना जमीन और आसमान में हैं। माँ प्यार करती हैं, सास शासन करती है। कितनी ही दयालु, सहनशील, सतो-गुणी स्त्री हो, सास बनते ही मानो ब्याई हुई गाय हो जाती हैं। जिसे पुत्र से जितना ही ज्यादा प्रेम है, वह बहू पर उतनी ही निर्दयता से शासन करती हैं। मुझे भी अपने ऊपर विश्वास नहीं है। अधिकार पाकर किसे मद नहीं हो जाता। मैंने तय कर लिया हैं। सास बनूँगी ही नहीं। औरत की गुलामी सासों के बल पर कायम हैं। जिस दिन सासें न रहेंगी औरत की गुलामी का भी अन्त हो जायगा।

पति—मेरा ख्याल हैं, तुम जरा भी सहज बुद्धि से काम लो तो तुम अम्माँ पर शासन कर सकती हो। तुमने हमारी बातें कुछ सुनीं ?

स्त्री—बिना सुने ही मैंने समझ लिया कि क्या बातें हो रही होंगी। वही बहू का रोना...

पति—नहीं-नहीं। तुमने बिलकुल गलत समझा। अम्माँ के मिजाज में आज मैंने विस्मयकारी अन्तर देखा, बिलकुल अभूतपूर्व। आज वह जैसे अपनी कटुताओं पर लज्जित हो रही थीं। हाँ, प्रत्यक्ष-रूप से नहीं, संकेत रूप से। अब तक वह तुमसे इसलिये नाराज रहती थीं कि तुम देर में उठती हो। अब शायद उन्हें यह चिन्ता हो रही है कि कहीं सवेरे उठने से तुम्हें ठण्ड न लग जाय। तुम्हारे लिये पानी गर्म करने को कह रही थीं।

स्त्री—(प्रसन्न होकर) सच !

पति—हाँ, मुझे तो सुनकर आश्चर्य हुआ।

स्त्री—तो मैं मुँह अँधेरे उठूँगी। ऐसी ठण्ड क्या लग जायगी। लेकिन तुम मुझे चकमा तो नहीं दे रहे हो ?

पति—अब इस बदगुमानी का क्या इलाज। आदमी को कभी-कभी अपने अन्याय पर खेद तो होता ही है।

स्त्री—तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर। अब मैं गजरदम उठूँगी। वह बेचारी मेरे लिए क्यों पानी गर्म करेंगी। मैं खुद गर्म कर लूँगी। आदमी करना चाहे तो क्या नहीं कर सकता।

पति—मुझे तो उनकी बातें सुन-सुनकर ऐसा लगता था जैसे किसी दैवी आदेश ने उनकी आत्मा को जगा दिया हो। तुम्हारे अल्हड़पन और चपलता पर कितना भन्नाती हैं। चाहती थीं कि घर में कोई बड़ी-बूढ़ी आये तो तुम उसके चरण छुओ। लेकिन शायद अब उन्हें मालूम होने लगा कि उस उम्र में सभी थोड़े बहुत अल्हड़ होते हैं। शायद उन्हें अपनी जवानी याद आ रही हैं। कहती थीं, यही तो शौक-सिंगार पहनने-ओढ़ने, खाने-खेलने के दिन हैं, बूढ़ियों का तो दिन भर ताँता लगा रहता है, कोई कहाँ तक उनके चरण छुए और क्यों छुए। ऐसी कहाँ की बड़ी देवियां हैं।

स्त्री—मुझे तो हर्षोन्माद हुआ चाहता है।

पति—मुझे तो विश्वास ही न आता था। स्वप्न देखने का सन्देह हो रहा था।

स्त्री—अब आई हैं राह पर।

पति—कोई दैवी प्रेरणा समझो।

स्त्री—मैं कल से ठेठ बहू बन जाऊँगी। किसी को खबर भी न होगी कि कब अपना मेक-अप करती हूँ। सिनेमा के लिए भी सप्ताह में एक दिन काफी है। बूढ़ियों के पांव छू लेने में ही क्या हरज है। वह देवियां न सही, चुड़ैलें सही, मुझे आशीर्वाद तो देंगी, मेरा गुण तो गावेंगी।

पति—सिनेमा का तो उन्होंने नाम भी नहीं लिया।

स्त्री—तुमको जो इसका शौक है। अब तुम्हें भी न जाने दूँगी।

पति—लेकिन सोचो, तुमने कितनी ऊँची शिक्षा पाई है, किस कुल की हो, इन खूसट बुढ़ियों के पाँव पर सिर रखना तुम्हें बिलकुल शोभा न देगा।

स्त्री—तो क्या ऊँची शिक्षा के यह मानी हैं कि हम दूसरों को नीचा समझें? बुड्ढे कितने ही मूर्ख हों, लेकिन दुनिया का तजरबा तो रखते हैं। कुल की प्रतिष्ठा भी नम्रता और सद्व्यवहार से होती है, हेंकड़ी और रुखाई से नहीं।

पति—मुझे तो यही ताज्जुब होता है कि इतनी जल्द इनकी काया-पलट कैसे हो गई। अब इन्हें बहुओं का सास के पाँव दबाना या उनकी साड़ी धोना, या उनकी देह में मुक्कियाँ लगाना बुरा लगने लगा है। कहती थीं, बहू कोई लौंडी थोड़े ही है कि बैठी सास के पाँव दबाये।

स्त्री—मेरी कसम?

पति—हाँ जी, सच कहता हूँ। और तो और अब वह तुम्हें खाना भी न पकाने देंगी। कहती थीं, जब बहू के सिर में दर्द होता है तो क्यों उसे सताया जाय, कोई महराज रख लो।

स्त्री—(फूली न समाकर) मैं तो आकाश में उठी जा रही हूँ। ऐसी सास के तो चरण धो-धोकर पिये। मगर तुमने पूछा नहीं, अब तक तुम क्यों उसे मार-मारकर हकीम बनाने पर तुली रहती थीं।

पति—पूछा क्यों नहीं, भला मैं छोड़नेवाला था। बोलीं, मैं अन्धी हो गई थी। मैंने हमेशा खाना पकाया है, फिर बहू क्यों न पकाये। लेकिन अब उनकी समझ में आया है कि वह निर्धन बाप की बेटी थीं, तुम सम्पन्न कुल की कन्या हो।

स्त्री—अम्माँ जी दिल की साफ हैं।

पति—बस, जरा पुरानी लकीर पर जान देती हैं।

स्त्री—इसे मैं क्षमा के योग्य समझती हूँ। जिस जलवायुमें हम पलते हैं, उसे एकबारगी नहीं बदल सकते। जिन रूढ़ियों और परम्पराओं में उनका जीवन बीता है, उन्हें तुरन्त त्याग देना उनके लिये कठिन है। वह क्या, कोई भी नहीं छोड़ सकता। वह तो फिर भी बहुत उदार हैं। तुम अभी महराज मत रक्खो। ख्वामख्वाह जरेबार क्यों होंगे। जब तरक्की हो जाय तो महराज रख लेना। अभी मैं खुद पका लिया करूँगी। तीन-चार प्राणियोंका खाना ही क्या। मेरी जान से कुछ तो अम्माँजी को आराम मिले। मैं जानती हूँ सब कुछ, लेकिन कोई रोब जमाना चाहे तो मुझ सेबुरा कोई नहीं।

पति—मगर यह तो मुझे बुरा लगेगा कि तुम रात को अम्माँके पाँव दबाने बैठो।

स्त्री—बुरा लगने की कौन बात है। जब उन्हें मेरा इतना ख्याल है तो मुझे भी उनका लिहाज करना चाहिए। जिस दिन मैं उनके पाँव दबाने बैठूंगी, वह मुझ पर प्राण देने लगेंगी। आखिर बहू-बेटे का कुछ सुख उन्हें भी तो हो। बड़ों की सेवा करने में हेठी नहीं होती। बुरा जब लगता है, जब वह शासन करते हैं। और अम्माँ मुझसे पाँव दबवायेंगी थोड़े ही, सेंत का यश मिलेगा।

पति—अब तो अम्माँ को तुम्हारी फुजूलखर्ची भी बुरी नहीं लगती। कहती थीं, रुपये-पैसे बहू के हाथ में दे दिया करो।

स्त्री—चिढ़कर तो नहीं कहती थीं?

पति—नहीं-नहीं, प्रेम से कह रही थीं। उन्हें अब भय हो रहा है कि उनके हाथ में पैसे रहने से तुम्हें असुविधा होती होगी। तुम बार-बार उनसे माँगते लजाती भी होगी और डरती भी होगी, और तुम्हें अपनी जरूरतों को रोकना पड़ता होगा।

स्त्री—ना भैया, मैं यह जंजाल अभी अपने सिर न लूँगी। तुम्हारी थोड़ी-सी तो आमदनी है, कहीं जल्दी से खर्च हो जाय तो महीना कटना मुशकिल हो जाय। थोड़े में निर्वाह करने की विद्या उन्ही को आती है। मेरी ऐसी जरूरतें ही क्या हैं। मैं तो केवल अम्मांजी को चिढ़ाने के लिये उनसे बार-बार रुपये मांगती थी। मेरे पास तो खुद सौ-पचास रुपये पड़े रहते हैं, बाबूजी का पत्र आता है तो उसमें दस-बीस के नोट जरूर होते हैं। लेकिन अब मुझे हाथ रोकना पड़ेगा। आखिर बाबूजी कबतक देते चले जायँगे। और यह कौन सी अच्छी बात है कि मैं हमेशा उन पर टैक्स लगाती रहूँ।

पति—देख लेना, अम्मां अब तुम्हें कितना प्यार करती हैं।

स्त्री—तुम भी देख लेना, मैं उनकी कितनी सेवा करती हूँ।

पति—मगर शुरू तो उन्हीं ने किया!

स्त्री—केवल विचार में। व्यवहार में आरंभ मेरी ही ओर से होगा। भोजन पकाने का समय आ गया; मैं चलती हूँ। आज कोई खास चीज तो न खाओगे?

पति—तुम्हारे हाथों की रूखी रोटियाँ भी पकवान का मजा देंगी।

स्त्री—अब तुम नटखटी करने लगे।

———— —

पर्दा

लेखक—श्री० विश्वम्भरनाथजी शर्मा, कौशिक
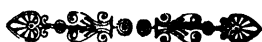
"क्यों बेटा, अब की कुम्भ हरद्वार में होगा न ?"

"हाँ, हरद्वार में होगा। क्यों, क्या चलोगी ?"

"हाँ, इच्छा तो थी—एक बेर और नहा लेती, फिर बारह बरस बाद आवेगा—कौन जाने उस समय तक जीती रहूँ—न रहूँ।"

"तो चलना, हर्ज क्या है ?"

"है कब ?"

"आज से बीस रोज है।"

"अच्छी बात है, जरूर चलूँगी।"

"यदि चलने का पक्का विचार हो तो मैं वहां ठहरने के लिए स्थान ठीक करूँ, क्योंकि उस समय वहां तिल धरने को भी जगह नहीं रहती।"

"मेरा तो विचार पक्का है, ले चलना तेरे हाथ है। यदि तू ले चले तो अपना अभी से पक्का-पोढ़ा कर ले।"

"अच्छी बात है।"

रातके दश बज चुके हैं। एक कमरे में एक वृद्धा जिसकी वयस ५० के ऊपर होगी और एक युवक जिसकी अवस्था २५-२६ वर्ष के लगभग है बैठे उपर्युक्त वार्तालाप कर रहे हैं।

युवक ने कहा—अच्छा तो कल मैं अपने एक मित्र को चिट्ठी

लिखूँगा। वह वहीं हरद्वार में रहते हैं, ठहरने का प्रबन्ध कर देंगे।

वृद्धा—वहां कोई दस-बसी रोज तो ठहरना नहीं, केवल दो रोज की तो बात ही है।

युवक—अरे वहां खड़े होने की जगह तो मिलती नहीं है—ऐसी भीड़ें होती हैं। पहले से प्रबन्ध कर लेना ठीक है, फिर चाहे दो रोज रहना, चाहे दस रोज; मना कौन करता है?

वृद्धा—अच्छी बात है, जैसा तेरी समझ में आवे, कर। मैं चलूँगी जरूर, इतना याद रखना।

युवक—हाँ-हाँ, जरूर चलना। तुम निश्चिन्त रहो, मैं सब प्रबन्ध कर लूँगा।

वृद्धा कमरे में लगे हुए क्लाक की ओर देखकर बोली—अच्छा, अब जाकर सोओ, साढ़े दस बजनेवाले हैं। कल सबेरे ही चिट्ठी लिख देना।

युवक उठकर बोला—हाँ, लिख दूँगा।

यह कहकर युवक कमरे के बाहर आया और उसी कमरे से मिले हुए दूसरे कमरे में घुसा। यह कमरा पहले कमरे से अधिक सजा हुआ था। इस कमरे में एक ओर एक मेज लगी थी। और उसके पास दो-तीन कुर्सियां रक्खी थीं। इनमें से एकपर एक सुन्दर नवयुवती बैठी हुई थी। एक ओर दो पलँग बिछे हुए थे और उनपर बिस्तर लगे थे। युवती एक अंगरेजी पुस्तक के चित्र देख रही थी।

युवक युवती के पास पहुँचकर मुस्कराते हुए बोला—क्या हो रहा है?

युवती—इस किताब की तस्वीरें देख रही हूँ। इसमें सब साहब-मेमों की तस्वीरें हैं।

युवक—और क्या अंगरेजी किताब में तुम्हारी तस्वीर होती?

युवती कुछ शर्माकर बोली—वाह ! मेरी तस्वीर क्यों हो, मुझे क्या ऐसी सस्ती समझ लिया है।

युवक हँसकर बोला—पुस्तकों में तस्वीरें सस्ते आदमियों की नहीं रहतीं, महँगे आदमियों की रहती हैं।

युवती—रहती होंगी, हमें क्या करना है !

यह कहकर युवती ने पुस्तक बन्द करके एक ओर रख दी और कहा—आज माता जी से बड़ी बातें हुईं !

युवक युवती के बराबर ही दूसरी कुर्सी पर बैठकर बोला—हाँ, कुम्भ में जाने को कहती हैं।

यवती उत्सुक होकर बोली—सच ?

युवक—हाँ-हाँ, जाना पक्का हो गया है।

युवती—मैं भी चलूँगी।

युवक—तुम ! तुम क्या करोगी चलके ! वहां बड़ी भीड़ें होती हैं।

युवती—भीड़ें होती हैं तो क्या हुआ ?

युवक—हुआ क्यों नहीं, वहाँ तुम्हें सँभालेगा कौन ?

युवती—माता जी को जो सँभालेगा, वही हमें भी सँभालेगा।

युवक—अरे नहीं, तुम्हारा जाना ठीक नहीं।

युवती—क्यों, मेरा जाना क्यों ठीक नहीं ? क्या मैं आदमी नहीं हूँ ?

युवक—आदमी-वादमी तुम सब कुछ हो ; पर वहां बड़ी दिक्कत होती है—न ठहरने का ठीक होता है, न खाने-पीने का।

युवती—जहाँ तुम और माता जी ठहरोगे, वहीं मैं भी ठहर जाऊँगी; जो तुम लोग खाओगे, वहीं मैं भी खा लूँगी। मैंने आज तक कुम्भ नहीं देखा, मेरी देखने की बड़ी इच्छा है।

युवक—अरे तो देख लेना, अभी बहुत उमर पड़ी है। यह बातें बुढ़ापे में की जाती हैं।

युवती—बुढ़ापे की बुढ़ापे में देखी जायगी। आजकल एक पल का तो भरोसा है ही नहीं। देखो न, पड़ोस के वकील साहब की घरवाली बैठे-बैठे मर गई और अभी जवान थी। आजकल जिन्दगी का कोई भरोसा है।

युवक—यह तुमने और दिक्कत पैदा कर दी।

युवती—हां; सारी दिक्कत मेरे ही जाने में है।

यह कहकर युवती ने मुख भारी कर लिया। युवक ने कहा—अच्छा देखो, कल मैं अपने एक मित्र को चिट्ठी लिखूंगा, यदि ठहरने का कोई अच्छा प्रबन्ध हो गया तो तुम भी चली चलना।

युवती—ठहरने का प्रबन्ध क्या? मेरे लिये कोई महल तो चाहिये नहीं—जहाँ तुम ठहरोगे वहीं मैं भी ठहर जाऊँगी।

युवक-हमारे ठहरने की भली चलाई! हमें क्या, हम तो मैदान में भी रात काट सकते हैं; पर तुम्हारे लिये तो मकान की आवश्यकता पड़ेगी।

युवती—तो क्या वहां मकानों का टोटा है?

युवक—यही तो बात है। कुम्भ के अवसर पर कोठरी तक नहीं मिलती? लाखों आदमी आते हैं।

युवती—आखिर लाखों आदमी कहीं ठहरते ही होंगे?

युवक—ऐसे ही ठहरते हैं। जिन्हें जगह मिल गई उन्हें मिल गई, बाकी मैदान में ही पड़े रहते हैं।

युवती—तो जहाँ सबको जगह मिलेगी, वहां हमें भी मिल जायगी।

युवक—मिल जाय तो चली चलना।

युवती—चाहे जगह मिले या न मिले, तुम जाओगे तो मैं भी चलूँगी—यह याद रखना।

युवक—हाँ हाँ, क्या हर्ज है? अच्छा अब चलो सोवें, नींद लगी है।

(२)

पं० श्यामाचरण अपनी माता तथा पत्नीसहित हरिद्वार चले। साथ में एक नौकर भी था। उनकी पत्नी यही पुराने ढङ्ग के परिच्छादन में में थी—मिश्रदेश की मोमियाई की भांति कपड़े से ढंकी हुई, उसपर हाथभर का लम्बा घूँघट! उनकी माता वृद्धा होने के कारण स्वयं तो विशेष पर्दे का विचार नहीं करती थीं; पर पुत्रवधू के लिये उन्हें पर्दे की पूरी आवश्यकता थी। उनका वश चलता तो वह पुत्रवधू को सन्दूक में बन्द कर ले जातीं। पं० श्यामाचरण को भी अपनी पत्नी के पर्दे का पूरा ध्यान था; क्योंकि वह भी उसी वातावरण में पले थे जिसमें कि पर्दे के विरुद्ध कहना पाप ही समझा जाता है—आचरण करना तो बहुत दूर की बात है।

स्टेशनपर पहुँचे। गाड़ी आनेमें देर थी। अतएव श्यामाचरण ने माता तथा पत्नी को प्लेटफार्म पर एक कोने में बिठा दिया और स्वयम् प्लेटफार्म पर टहलने लगे। परन्तु ध्यान उनका पत्नी की ही ओर था कि कहीं उसके हाथ तो नहीं खुले हैं, कहीं घूँघट की लम्बाई तो नहीं घट रही है। उधर उनकी माता भी पुत्रवधू के पास इस प्रकार से बैठी थीं, जिस प्रकार कोई ज्वर-पीड़ित रोगी के पास बैठता है। जहाँ ज़रा पैर खुले, झट पैरों को ढंक दिया; जहाँ जरा बहू की उँगली बाहर चमकी वहीं उन्होंने उसपर कपड़ा थोप दिया। पं० श्यामाचरण लोगों की निगाहों को भी ताड़ रहे थे। जहाँ किसीने भूले से भी उनकी स्त्री की ओर देखा, बस उनकी भृकुटी चढ़ गई। समझे कि हमारी पत्नीको घूर रहा है। यद्यपि स्वयम् अन्य स्त्रियोंको घूर रहे थे, पर इसे वह अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे। वह स्वयम् चाहे जिसे ताकें, चाहे जिसे घूरें; पर उनकी पत्नी की ओर कोई दृष्टि न उठावे। यद्यपि उनकी पत्नी कपड़े की बण्डल बनी बैठी थी, पर इतने पर भी उन्हें तुष्टि नहीं थी।

कदाचित् किसी की दृष्टि एक्स-किरणों का काम कर जाय और उनकी पत्नी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग देख ले। अपनी पत्नी को बाहर ले जाने में सब से बड़ी दिक्कत उनके लिये यही थी कि पत्नी को पूर्ण पर्दे में रखनेका समुचित प्रबन्ध वह नहीं कर पाते थे। यद्यपि इस समय पत्न की बेपर्दगी से उन्हें घोर कष्ट हो रहा था; क्योंकि कपड़े से पूरा पर्दा उनकी समझ में असम्भव था, पूरा पर्दा तो केवल दीवारें ही कर सकती हैं। परन्तु हर समय दीवारों का साथ रहना, विशेषतः यात्रा में असम्भव है। इसलिए बेचारे परेशान थे। वह इसे एक मुसीबत समझ रहे थे। पर करते क्या? विवश थे। इसलिए इस मुसीबत को धैर्य के साथ झेल रहे थे। सोचते थे, सदा दिन एक से नहीं रहते, ईश्वर चाहेगा तो यह विपत्ति टल ही जायगी।

उचित समय पर गाड़ी आई। श्यामाचरण ने केवल अपने नौकर के लिए थर्ड क्लास का टिकट खरीदा था और अपने सब के लिए इण्टर का। श्मामाचरण ने पहले तो पूरी ट्रेन देखकर यह तय किया कि कहाँ जगह खाली है। खाली जगह का तात्पर्य उनका यह था कि एक पूरा कम्पार्टमेण्ट खाली मिल जाय। परन्तु उनके दुर्भाग्य से ऐसा कोई कम्पार्टमेण्ट न मिला। एक कम्पार्टमेण्ट में दो बर्थ खाली थे, पर वे उनके लिये पर्याप्त न थे। उन्होंने दौड़कर अपनी माता से कहा—जगह तो कहीं है नहीं, बड़ी भीड़ है। जनाने दर्जे में जगह खाली है, पर वहाँ तुम लोगों का बैठना ठीक नहीं।

माता बोलीं—हमें तुम अपने साथ ही बिठाओ, हम जनाने दर्जे में नहीं बैठेंगी। उस दिन अखबार में पढ़ा था, क्या हाल हुआ?

श्यामाचरण—हां, इसीलिये तो मैं आप ही उचित नहीं समझता अच्छा चलो, एक दर्जे में दो बेंचें खाली हैं, वहाँ बैठ जाओ। पर्दा तान लेंगे। अब तो जो पड़ेगी वह भोगनी ही होगी; चलो झटपट।

श्यामाचरण ने माता तथा पत्नी को ले जाकर उसी इण्टर के दर्जे मे बिठाया, जिसमें दो बेंचें खाली थीं।

असबाब-वसबाब रखने के पश्चात् आपने एक चादर निकाली और उस बर्थ के चारों ओर, जिसपर उनकी माता तथा पत्नी बैठी थीं, बाँधने लगे। उस दर्जे में बैठे हुए आदमियों में से एक ने कहा—इससे तो अच्छा यह रहता कि आप औरतों को जनाने दर्जे में बिठा देते, वहाँ काफी जगह है।

श्यामाचरण बोले—यह मेरे वसूल के खिलाफ है। जनाने दर्जे मे औरतों की खबरदारी कौन करेगा? रात का सफर ठहरा। अक्सर बदमाश लोग जनाने दर्जे में घुस आते हैं। एक वारदात तो हाल ही में अखबारोंमें छपी थी।

एक दूसरे सज्जन बोले—अजी ऐसा कभी-कभी हो जाता है, और वह भी तब, जब कि एक-दो औरतें हों। ऐसा होने लगे तो फिर जनाने दर्जे रक्खे ही क्यों जायँ। जनाना दर्जा बिलकुल पास ही है, आप कभी-कभी उतरकर देख लिया कीजिएगा।

श्यामाचरण—अजी रात में पड़कर सोएँगे या पहरा देते चलेंगे?

एक तीसरे सज्जन बोले—हमारी इतनी उम्र होने आई, हमारी औरतें सदा जनाने दर्जे में ही सफर करती हैं। मगर जनाब, आजतक तो कोई वारदात हुई नहीं।

एक अन्य महाशय बोले—अजी कहीं हो सकता है। वह तो कभी इत्तिफाक से हो जो जाता है। सो जनाब इसके लिए क्या किया जाय? घर में चोरी नहीं हो जाती है? वह तो बात ही दूसरी है।

श्यामाचारण बड़े व्यंग से बोले—तो जनाब, ऐसा अवसर ही क्यों आने दें कि जो चोर चोरी करने का मौका मिले।

उपस्थित लोग मुस्कराकर चुप हो रहे। एक ने धीमे स्वर में कहा—डिबिया में बन्द करके जेब में डाल लिया करो, हमारी बला से।

पर्दा तानकर श्यामाचरण ने सन्तोष की एक दीर्घ निश्वास छोड़ी और सामने ही दूसरे बर्थ पर बैठ गए उनका नौकर थर्ड क्लास में चला गया।

गाड़ी चलने के पाँच मिनट पहले टिकट-चेकर आया। उसने टिकट देखकर पूछा—इस पर्दे में कितनी औरतें हैं?

श्यामाचरण—दो।

चेकर बोला—सिर्फ दो! और उनके लिए आपने पूरे बर्थ पर कब्जा कर लिया? वाह साहब, वाह! इस पर्दे को हटाइए।

श्यामाचरण—क्यों साहब, पर्दा क्यों हटाएँ? क्या किराया नहीं दिया, मुफ्त बैठे हैं?

चेकर—यह कौन कहता है? मगर जनाब, किराया तो आपने दो ही आदमियों का दिया है और जगह आपने घेरी है छः आदमियों की। यह कैसे हो सकता है? या तो चार आदमियों का टिकट और खरीदिए या इस पर्दे को हटाइए।

श्यामाचरण—यह तो अजब अन्धेर है। हमारी खुशी, हम चाहें पर्दा तानें, चाहे कुछ करें।

चेकर—आप पर्दा नहीं कनात लगवाइए; शामियाना तानिए मना कौन करता है। मगर जगह दो ही आदमियों की घेरिए। वह देखिए, सामने लिखा हैं, देख लीजिए, एक बर्थ पर छः आदमी बैठ सकते हैं।

श्यामाचरण—लिखे होने से क्या होता है? अधिकतर तो बैठने को जगह नहीं मिलती, एक-एक बर्थ पर दस-दस आदमी बैठते हैं।

चेकर—मैं कम की बात कर रहा हूँ, आप ज्यादा की कह रहे हैं। यह नहीं हो सकता कि एक या दो आदमी पूरा बर्थ घेर लें और दूसरों को बैठने न दें। यदि इस बर्थ पर छः आदमी हो जायँ तब तो आपको हक हासिल है कि आप किसी को बैठने दें या न दें, लेकिन जब तक छः नहीं हो जाते, तब तक आप इसपर किसी को

बैठने से रोक नहीं सकते। पर्दा तानने के माने यही हैं कि आप दूसरे को इस बर्थ पर बैठने से मना करते हैं। पर्दा तना देखकर कौन भला आदमी इसके अन्दर घुसेगा?

यह सुनकर दर्जे के सब लोग हंस पड़े।

एक महाशय हंसते हुए बोले—अगर कोई पर्दे के अन्दर घुसना भी चाहे तो भला यह काहे को घुसने देंगे।

श्यामाचरण यह सुनकर कट गए। लज्जादेवी के साथ क्रोधदेव सदैव पधारा करते हैं। अतएव उन्हें क्रोध आ गया। वह उन महाशय से बोले—आप जरा जबान सँभालकर बातें कीजिए, वरना अच्छा न होगा।

चेकर बोल उठा—खैर, इस झगड़े से क्या मतलब, आप या तो पर्दा हटाइए या चार टिकिट और खरीदिए।

श्यामाचरण—पर्दा तो हट नहीं सकता। पर्दानशीन औरतें बेपर्द कैसे बैठ सकती हैं?

चेकर—पर्दानशीन औरतों के लिए ही जनाना दर्जा रक्खा जाता है। उसमें बिठा दीजिए।

एक महाशय मुस्कराकर बोले—ऐसा नहीं हो सकता। जनाने दर्जे में औरतें लुट जाती हैं।

इसपर पुनः सब हँस पड़े।

इसी समय गार्ड ने सीटी दी।

चेकर बोला—तो कहिए, क्या इरादे हैं? गाड़ी छूटती है।

श्यामाचरण—पर्दा तो हट नहीं सकता।

चेकर—अच्छी बात है, न हटाइए। अगले स्टेशन पर आपको चार टिकटों का चार्ज देना पड़ेगा।

यह कहकर चेकर चला गया।

गाड़ी चली और अगले स्टेशन पर पहुँची। गाड़ी के रुकते ही

दो चेकर घुस आए और बोले—या तो पर्दा हटाइए या चार टिकटों का चार्ज दीजिए।

श्यामाचरण की नाक में दम हो गया। मन में हिसाब जो लगाया तो चार टिकटों का चार्ज देने में तीस रुपये लग जाते थे। इधर चेकर बारम्बार वही एक बात कह रहे थे। अन्त में श्यामाचरण चिल्लाकर बोले—तो आप यही चाहते हैं कि चार सीटें खाली रहें?

चेकर—जी हाँ।

श्यामाचरण उठे और उन्होंने एक ओर से पर्दा खोलकर इस प्रकार बाँध दिया कि उनकी माता तथा पत्नी तो पर्दे के अन्दर रहीं और आधे से अधिक बर्थ पर्दे के बाहर हो गया। यह प्रबन्ध करके श्यामाचरण बोले—कहिए अब ठीक है?

चेकर—जी हाँ, ठीक है। अब हमें कोई एतराज नहीं।

उसी समय दो मुसाफिर अन्दर आए। श्यामाचरण उचककर अपनी माता के पास जा बैठे। वे दोनों मुसाफिर दूसरी ओर उनके बगल में बैठ गए। इस प्रकार पूरा बर्थ घिर गया। दोनों चेकर चले गए।

एक महाशय बोले—बात तो आपने अच्छी सोची, पर इसमें औरतों को तकलीफ होगी। उन्हें बैठे रहना पड़ेगा। अगर पर्दा न रहता तो औरतें उसपर लेट सकती थीं। औरतों को देखकर उसपर फिर कोई दूसरा आदमी न बैठ सकता। औरतें आराम से सोती हुई चली जातीं। अब तो तकलीफ होगी।

श्यामाचरण—जनाब सफर में आराम मिलता कहाँ है? सफर में तो तकलीफ ही तकलीफ है।

(३)

लखनऊ में गाड़ी बदली जाती थी। श्यामाचरण ने गाड़ी से उतरकर प्लेटफार्म पर अड्डा जमाया। देहरादून इक्सप्रेस के आने में दो घण्टे

की देर थी। श्यामाचरण सबको प्लेटफार्म पर छोड़कर इधर-उधर घूमने चले गए। गाड़ी आने के पन्द्रह मिनिट पहले आप लपकते हुए आए और अपना अड्डा ढूंढ़ने लगे। उन्होंने देखा कि जहाँ वह अपना असबाब छोड़ गए थे, वहाँ उनकी स्त्री अकेली बैठी है। यह देखकर उन्होंने पूछा—माता जी कहाँ हैं? बुधुआ (नौकर) कहाँ गया?

स्त्री ने कोई उत्तर न दिया। श्यामाचरण ने पुनः वही प्रश्न किया, स्त्री फिर मौन रही। इस बार उन्होंने स्त्री का कन्धा पकड़ हिलाया। वह कन्धा पकड़कर हिला ही रहे थे कि दूसरी ओर से एक आदमी लपकता हुआ आया और उसने एक घूँसा श्यामाचरण के मुह पर मारा। श्यामाचरण की आँखों के आगे सितारे चमकने लगे। वह व्यक्ति बोला—"बदमाश कहीं का! दिन-दहाड़े औरतों को छेड़ता है।" यह कहकर उसने एक घूंसा और जड़ा। यह देखकर कुछ आदमी जमा हो गए। एक ने पूछा—"क्या मामला है?" वह व्यक्ति बोला—"जरा देखिये तो सही, औरतों को छेड़ता हैं। समझा होगा कि अकेली है।"

एक दूसरे महाशय बोले—पुलिस में दीजिए साले को। यह कपड़े और यह हरकत!

एक तीसरे सज्जन बोले—अजी आजकल बदमाश इसी फैशन में रहते हैं।

श्यामाचरण दो घूंसे खाकर हतबुद्धि से हो गए थे। अब उन्होंने अपने होश-हवास ठीक करके कहा—क्षमा कीजिए, मैने इसे अपनी स्त्री समझा था।

यह सुनते ही उस व्यक्ति ने एक घूँसा और जमाया और बोला—यह देखिए, उसपर और तुर्रा—अपनी स्त्री समझा था!

एक व्यक्ति—अजी आप पुलिस में दीजिए इस हरामजादे को। बड़ा पक्का बदमाश मालूम होता है।

इतने में भीड़ में से एक आदमी बोला—अरे मालिक, मालकिन और माँ जी वैसी बैठी हैं।

श्यामाचरण ने देखा उनका नौकर बुधुवा खड़ा है। झल्लाकर बोले—क्यों बे पाजी; मैं तो तुम लोगों को इधर बिठा गया था, तुम उधर कहाँ चले गए?

बुधुवा—मालिक, वह कुली कहन लाग कि इन्टर किलास वैसी लागत है, वैसी चल के बैठो, तौन हम वैसी चले गए।

अब लोगों की समझ में आया कि वास्तव में भूल हो गई। वह व्यक्ति भी बोला—वाह, यह अच्छी रही।

श्यामाचरण—अब कहिये तो मैं आपको पुलिस के सुपुर्द करूँ।

वह व्यक्ति—आप मेरी स्त्री का कन्धा पकड़कर हिला रहे थे कि नहीं पहले यह बताइये!

श्यामाचरण—मैंने तो कहा था कि मैं इन्हें अपनी स्त्री समझा था। आपने मेरी सुनी ही नहीं। हाथ, पैर, मुँह तो सब ढँका हुआ है—मेरी स्त्री के और आपकी स्त्री के कपड़े एक ही तरह के हैं, इसलिए यह गलती हुई।

एक सज्जन बोल उठे—अच्छा अब जाने दीजिए, गलती दोनों तरफ से हुई। उन्होंने इनको अपनी स्त्री समझा, आपने इन्हें बदमाश समझा बेकुसूर।

श्यामाचरण—तो इनका क्या बिगड़ा, मेरा तो कल्याण हो गया।

लोगों ने समझा-बुझाकर श्यामाचरण को विदा किया। श्यामाचरण का एक ओठ सूज गया और बाईं आँख काली पड़ गई। माता के सामने जो पहुँचे तो उसने श्यामाचरण की यह दुर्दशा देखकर और सब हाल सुनकर उन्हें आड़े हाथों लिया—अपना तो नवाब की तरह छड़ी घुमाते चल दिए, यहाँ हम सब अकेली रह गईं—कुली इधर ले आया। और तुम ऐसे अन्धे हो गए कि अपने-पराए को नहीं पहचाना। यह तो समझा

होता कि बहू अकेली कैसे रह सकती है—उसके पास मैं बैठी होती, बुधवा होता। यह तो कहो बुधुवा भीड़ देखकर पहुँच गया, नहीं पुलिस के हवाले कर दिए जाते।

श्यामाचरण झल्लाकर बोले—जी हाँ, अन्धेर है! और मैं चुपचाप चला जाता?

इसी तर्क-वितर्क में गाड़ी आ गई। श्यामाचरण ने दौड़-धूप करके बड़ी मुश्किल से एक बर्थ पर उसी प्रकार कपड़े का छोटा-सा घिरौंदा बनाकर माता तथा पत्नी को बिठाया। बेचारे बड़े परेशान! हुलिया ऐसा बना था कि देखते ही लोग समझ जाते थे कि कहीं से पिटकर आए हैं। श्यामाचरण मन में सोचते थे कि न जाने किस बुरी सायत से चले थे कि आधा सफर तय नहीं हुआ और सब कर्म हो गए। यदि इस यात्रा से जीवित लौट आवें तो यही बहुत है।

खैर, किसी न किसी प्रकार स्टेशन पर पहुँच गए। रात भर तीनों प्राणियों में से किसी को पलक झपकाना तक नसीब न हुआ। बैठे-बैठे रात काटी।

(४)

मित्र के मकान पर पहुँचकर श्यामाचरण ने डेरा डाला। अभी अच्छी तरह बैठने भी न पाए थे कि माता ने गङ्गास्नान करने की इच्छा प्रकट की। श्यामाचरण बोले—अभी तो सफर से चले आ रहे हैं, रात-भर सोने को नहीं मिला, बदन चूर होरहा है, आज घर पर ही नहा लो! कल कुम्भ है—कल नहाना।

माता बोलीं—वाह! तीर्थस्थान में घर पर नहावें! इतना रुपया खर्च करके और दुख उठाकर यहाँ तक आए हैं तो क्या घर पर नहाने के लिए?

अन्त में विवश होकर श्यामाचरण माता तथा पत्नी को गङ्गास्नान

ाने ले चले। चलते समय मित्र ने कहा—जरा होशियारी से रहिएगा, 'ड़ बड़ी है।

श्यामाचरण हर की पैड़ी पर जो पहुँचे तो भीड़ देखकर घबड़ा ए। माता से बोले—भीड़ बहुत है, तुम दोनों नहा आओ, हम यहां ड़े हैं। नहाकर यहाँ आ जाना।

माता ने पूछा—तू नहीं नहायगा!

श्यामाचरण—मैं बाद को नहा लूँगा, नहीं डेरे पर ही नहा लूंगा। रे लिए यह आवश्यक नहीं है कि यहीं नहाऊँ।

दोनों स्त्रियां नहाने चली गईं। बुधुआ भी श्यामाचरण के पास ड़ा गया।

आध घण्टे में उनकी माता लौटकर आईं, परन्तु वह अकेली थीं। यामाचरण ने घबराकर पूछा—"बहू कहां रह गई!"

माता ने घूमकर अपने पीछे की ओर देखा और बोलीं—अरे मेरे छे-पीछे तो आ रही थी, कहां रह गई!

श्यामाचरण ने सिर पकड़कर कहा—गजब हो गया। अब भला इस ाड़ में कहां मिलेगी! मैं तो पहले ही समझ गया था कि कुछ अनर्थ वश्य होगा। आरम्भ ही से वैसे ही लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे।

माता बोलीं—तो अरे अब इस प्रकार सिर पकड़कर बैठने से क्या ागा! कहीं ढूँढ़ो। हाय! ऐसा जानती तो मैं कभी न आती। वह यहां क मेरे पीछे-पीछे आई, यहां से न जाने कहां गायब हो गई।

श्यामाचरण उठे। बुधुआ से कहा—तू इधर आगे बढ़कर देख. उधर जाता हूँ। माता से बोले—तुम यहां से हिलना नहीं, या तो यहीं ठी रहना या सीधी डेरे पर जाना—समझीं?

यह कहकर श्यामाचरण दूसरी ओर भागे। यात्रियों की भीड़ दो ोर जा रही थी, एक ओर बुधुआ गया था।

श्यामाचरण लपकते हुए और प्रत्येक पर्देवाली स्त्री को देखते हुए

चले जा रहे थे। थोड़ी दूर गए थे कि उन्होंने देखा कि एक स्त्री जो उन्हीं की स्त्री-सदृश प्रतीत होती है, एक वृद्धा के पीछे चली जा रही है। वह वृद्धा उनकी माता के आकार-प्रकार की थी और वैसे ही कपड़े पहने थी। श्यामाचरण ने सोचा—हो न हो यही हमारी स्त्री है और माताजी के धोखे इस वृद्धा के पीछे चली आई है। वैसे चाहे श्यामाचरण तुरन्त उसका हाथ पकड़ लेते, पर लखनऊ-स्टेशन पर इसी कारण पिट चुके थे, इसलिए उनका साहस न पड़ा। वह उस स्त्री के पास पहुँचे और उन्होंने अपनी पत्नी का नाम लेकर पुकारा। उनके पुकारते ही वह टिठक गई। उसके ठिठकते ही श्यामाचरण समझ गए कि उन्हीं की पत्नी है। अब उन्होंने उसका हाथ पकड़ लिया और कर्कश स्वर में बोले—तुम इधर कहाँ चली आई? अन्धेर ही कर दिया था—यदि थोड़ी देर और हो जाती तो फिर तुम्हारा पता न लगता।

उनकी पत्नी बोली—मुझे इस घूँघट के मारे कुछ दिखाई तो पड़ता नहीं, खाली माता जी के पैर देखती आ रही थी।

श्यामाचरण—फूँक दो इस घूँघट को, इसमें आग लगा दो। इस घूँघट ने सोलहो कर्म तो करा दिए। अन्त में तुम्हें भी हाथ से खोया था, पर यह तो कहो न जाने कौन से पुण्य के कारण तुम मिल गईं।

इसी प्रकार की बातें करते हुए श्यामाचरण पत्नी को उसी स्थान पर लाए, जहाँ माता को बिठा आए थे। वहाँ से माता को साथ लेकर चले। बुधुआ भी इधर-उधर देखकर आ गया था।

सब लोग सकुशल डेरे पर पहुँच गए। उनके मित्र ने पूछा—बड़ी देर लगाई?

श्यामाचरण बोले—अरे यार, क्या बतलावें, कुम्भ नहाने क्या आए, आफत मोल ले ली। ऐसी मुसीबत उम्र भर नहीं झेली थी।

मित्र ने पूछा—क्यों ? क्या हुआ ? मुसीबत कैसी ?

श्यामाचरण—अब तुमसे क्या बतावें। घर से चले तो रेल में चेकरों से झगड़ा हुआ। यार लोगों ने फब्तियाँ कसीं, मैं खून का घूँट पी-पीकर रह गया, अन्यथा मार-पीट हो जाती। लखनऊ-स्टेशन पर पत्नी के धोखे से एक दूसरी स्त्री से बात करने लगा—वहाँ मार-पीट हो गई। उसका प्रमाण आप मेरी सूरत देखकर ही पा गए होंगे ? रेल में रात जैसे काटी, हमीं जानते हैं—घोर कष्ट हुआ। अब नहाने जो गए तो पत्नी खो गई। यह तो कहो तुरन्त दौड़ पड़े, अन्यथा कुम्भ के पीछे पत्नी भी हाथ से जाती।

मित्र—आखिर यह सब हुआ क्यों ?

श्यामाचरण—क्या बताऊँ। आप जानते हैं, हम लोगों में पर्दे का विचार बहुत होता है, उसी पर्दे के पीछे यह सब दुर्गति हुई।

मित्र—तो आखिर आप इतना पर्दा करते क्यों हैं ? आप तो पढ़े-लिखे आदमी हैं, फिर भी इन बातों को नहीं छोड़ते।

श्यामाचरण—पुरानी प्रथा चली आ रही है, उसी के अनुसार हम भी चलते हैं।

मित्र—अजी पुरानी प्रथा को चूल्हे में झोंकिए ! आजकल उन प्रथाओं से कष्ट ही मिलता है—सुख नहीं।

श्यामाचरण—पर्दा न होने से लोग औरतों पर बुरी दृष्टि डालते हैं।

मित्र—तो इससे क्या हुआ ? क्या आप नहीं अन्य स्त्रियों को देखते ? यदि केवल देखने का नाम ही बुरी दृष्टि डालना है, तो इसका तो कोई इलाज नहीं। अच्छी वस्तु को सभी देखते हैं, किन्तु देखने से होता क्या है ? यदि लोग बुरी दृष्टि डालते हैं तो उससे स्त्रियों को क्या हानि पहुँचती है ? यहाँ हरद्वार में हजारों पञ्जाबिनें आती हैं और पञ्जाब की खत्री-जाति आप जानते ही हैं कितनी सुन्दर जाति है—

उनकी स्त्रियां स्वछन्द घूमा करती हैं, उनका कोई क्या छीन लेता है? गुजरातिनें, मराठिनें सब बेपर्द घूमा करती हैं, उनका कोई क्या बिगाड़ लेता है? सच पूछिये तो पर्देवाली स्त्री को देखने लिये के लोग अधिक उत्सुक रहते हैं। जहाँ जरा हाथ-पैर अच्छे देखे, वहीं यह उत्सुकता उत्पन्न होती है कि जरा मुँह भी देखने को मिल जाय। पर्दाहीन स्त्रियों को एक बार देखा और सन्तुष्टि हो गई, उसमें कोई उत्सुकता शेष नहीं रह जाती। जो स्त्री मुँह खोले होगी उसको अधिक देखनेका साहस किसी पुरुष को नहीं हो सकता।

श्यामाचरण—गुण्डे और बदमाश तो देखते ही हैं।

मित्र—स्त्री की पवित्र दृष्टि के सामने कोई गुण्डा-बदमाश नहीं टिक सकता। मैंने तो आज तक कोई गुण्डा और बदमाश ऐसा नहीं देखा, जिसने किसी पर्दाहीन स्त्री को छेड़ा हो। पर्देवालियों को छेड़ते बहुधा देखा है।

श्यामाचरण—पर्दा न होने से स्त्रियों का चित्त भी बहक सकता है।

मित्र—तो इसके अर्थ तो यह हुए कि आपको अपनी स्त्री के मन की पवित्रता पर भरोसा नहीं। यदि स्त्री ही खराब हो तो जनाब, एक पर्दा क्या; बीस पर्दे भी उसे पवित्र नहीं रख सकते। वह घूंघट के भीतर से ही शिकार खेलती है, यह और भी अधिक भयानक है। आप तो समझते हैं कि आपकी स्त्री घूँघट निकाले बैठी है और वहां आपकी दृष्टि बचाकर आंखें लड़ाई जा रही हैं। यदि घूँघट न हो तो स्त्री ऐसा कदापि न करेगी, उसे भय रहेगा कि कोई उसके इस आचरण को देख न ले। इसके अतिरिक्त पर्दे से एक बड़ी भारी दिक्कत यह है कि स्त्री को यात्रा में भेड़ी की तरह स हाँकना पड़ता है—बिना आपके वह एक पग नहीं चल सकती। यदि पर्दा न हो तो उसे रास्ते की परिस्थिति का, अपने पराये का ज्ञान हो जाय और उस समय आपको उसके साथ होने से जरा भी कष्ट न पहुँचे। मैं तो जब कहीं बाहर जाता हूँ, तो अपनी स्त्री से मुझे

आराम ही मिलता है—कष्ट जरा भी नहीं। मैं केवल देख रेख-रखता हूँ। अन्यथा वह स्वयं असबाब धरा लेती है स्टेशनों पर आवश्यक वस्तु खरीद लेती है—सब काम कर लेती है। आप अपने को देखिए कि दो स्त्रियों को यहां तक लाने में सब कर्म हो गए। इस बीसवीं सदी में ये बातें! सच मानना, मुझे तो हँसी छूटती है। पञ्जाबी, मराठी, गुजराती स्त्रियां अकेली सैकड़ों मील की यात्रा करती हैं और उनका कोई बाल बांका नहीं कर पाता। यह सब मन का भ्रम है। जो खराब है, वह प्रत्येक दशा में खराब रहेगी—चाहे पर्दे में रहे, चाहे पर्दे के बाहर, और जो अच्छी है, वह प्रत्येक दशा में अच्छी रहेगी।

श्यामाचरण—यार जब स्त्री को ताकते हैं तो बुरा मालूम होता है।

मित्र—यह भी महामूर्खता है। आप अच्छी टोपी पहनकर निकलते हैं और लोग आपकी टोपी देखते हैं, तब आपको बुरा क्यों नहीं लगता? उस समय तो आपको प्रसन्नता होती है कि हमारे पास भी एक ऐसी चीज है; जिसपर लोगों की दृष्टि पड़ती है।

श्यामाचरण—टोपी और स्त्री में अन्तर है।

मित्र—अन्तर आपका अपना बनाया हुआ है। यदि कुछ अन्तर है भी, तो वह अन्तर टोपी की निकृष्टता और स्त्री की श्रेष्ठता का है। आपकी टोपी को लोग चुरा ले जा सकते हैं, पर आपकी स्त्री को चुरा ले जाना सरल नहीं है।

श्यामाचरण—कहते तो ठीक हो। मुझे भी इस पर्दे के कारण इतना कष्ट हुआ है कि मेरा हृदय ही जानता है।

मित्र—फिर भी तुम उसे त्यागते नहीं, यह आश्चर्य की बात है।

श्यामाचरण—इष्ट-मित्र हँसेंगे।

मित्र—आरम्भ में ही, क्योंकि आकस्मिक परिवर्तन सबका ध्यान आकर्षित करेगा. उसके पश्चात् फिर कुछ नहीं—साधारण बात हो जायगी।

श्यामाचरण—पुरानी प्रथा चली आ रही है, यही विचार है।

मित्र—यार, तुम निरे चोंच रहे। अरे पुरानी प्रथा से जब लाभ के बदले हानि है तो ऐसी प्रथा किस काम की! यह प्रथा मुसलमानी राज्य-काल से पड़ी है, उसके पहले पर्दे का कहीं नाम न था। मुसलमान-शासक सुन्दर स्त्रियों को छीनने की चेष्टा करते थे, इस कारण लोगों ने पर्दे में रखना आरम्भ किया कि न देखेंगे, न नीयत बिगड़ेगी। अब तो वह बात नहीं है, अब किसी की नीयत बिगड़ेगी तो वह कर क्या सकता है?

श्यामाचरण—अच्छी बात है, मैं इसे छोड़ने की चेष्टा करूँगा।

मित्र—चेष्टा क्या घर के अन्दर पहुँचकर करोगे? यहीं अवसर है। कल कुम्भ है, कल आज से कहीं अधिक भीड़ होगी। आज घूँघट के कारण तुम्हारी पत्नी लगभग खो ही गई थी, कल फिर वही बात हो सकती है। इसके अतिरिक्त अभी लौटकर जाने में रेल-यात्रा करनी है।

रेल-यात्रा का नाम सुनकर श्यामाचरण का हृदय काँप उठा। उन्होंने कहा—यह तो तुम पते की कह रहे हो।

मित्र—मेरी तो यह सम्मति है कि आज ही इस पर्दे को हटा दो। तीर्थ-स्थान है—यह शुभ काम इसी शुभ-स्थान से आरम्भ करो।

श्यामाचरण—अच्छी बात है, आज ही लो।

\+ \+ \+

श्यामाचरण ने उसी दिन से पर्दे का अन्त कर दिया। साथ ही उनके कष्टों का भी अन्त हो गया। अब पग-पग पर उन्हें स्त्रियों के साथ रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हरद्वार में वह एक सप्ताह रहे। दो दिन के पश्चात् फिर उन्हें स्त्रियों के साथ जाने की आवश्यकता नहीं रही। सास-बहू अकेले गङ्गा-स्नान कर आती थीं, बाजार से इच्छित वस्तु खरीद लाती थीं।

लौटने में रेल में भी उन्हें कोई कष्ट न हुआ। न पर्दा तानने का झंझट, न चेकरों से कहा-सुनी, न यारों की फब्तियाँ। आनन्द से बर्थ पर स्त्रियों को बिठा दिया। स्त्रियों को देखकर पुरुष स्वयं बर्थ खाली कर देते थे। आराम से दोनों स्त्रियाँ एक बर्थ पर सोती हुई चली आईं।

अब आजकल श्यामाचरण पर्दे के घोर विरोधी हो गए हैं।

कलयुग नहीं करयुग है यह!

लेखक—श्रीयुत सुदर्शन

(श्री सुदर्शनजी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखक हैं। उनकी यह कहानी पञ्जाब की एक सच्ची घटना पर आश्रित है, जो समाचार पत्रों के पाठकों को अभी भूली न होगी)

(१)

लाला सुरजनमल थके हुए अपने ड्राइंगरूम में आए और सोफे पर बैठकर सुस्ताने लगे। हुक्का पीते जाते थे और सामने दीवार के साथ टँगी हुई अपनी बेटी उषा की तसवीर देखते जाते थे। उसे देखकर उनके मन में आनन्द की लहर-सी उठती हुई मालूम हुई। मगर इसके साथ ही यह भी मालूम हुआ, जैसे उस लहर के ऊपर एक काली-सी घटा भी छा रही है। खुशी यह थी कि बेटी का व्याह हो रहा है, अपने घर जायगी। उन्होंने अपने कई अमीर मित्रों की पढ़ी-लिखी खूबसूरत लड़कियों का व्याह साधारण लड़कों के साथ होते देखा था, और अफसोस की ठंडी आहें भरी थीं। उनके माता-पिता मानते थे कि वे वर उनकी पुत्रियों के योग्य नहीं, मगर कुछ कर न सकते थे। जवान लड़कियाँ घर में कब तक बिठा रक्खें? मगर लाला सुरजनमल ने गहरा हाथ मारा था। उन्होंने जो लड़का उषादेवी के लिए पसन्द किया था वह लड़का न था, हीरा था। स्वस्थ,

सुन्दर, पढ़ा-लिखा, कुलीन। अभी-अभी विलायत से लौटा था, और आते ही बाप की बदौलत अच्छे पद पर नियुक्त हो गया था। लाला सुरजनमल से और लड़के के बाप से पुरानी मैत्री थी, वर्ना ऐसे वर कहाँ मिलते हैं? जो सुनता था कहता था, 'साहब! आपकी बेटी के सितारे बड़े जबर्दस्त हैं, जो ऐसा वर मिल गया। उसमें गुण सभी हैं, अवगुण एक भी नहीं। लड़की जीवन भर राज करेगी।' लाला सुरजनमल को सन्तोष था कि पढ़ा-लिखाकर लड़की की मिट्टी खराब नहीं की। मगर दुःख इस बात का था कि जुदाई की बेला आ गई। आज तक अपनी थी, आज पराई हो जायगी। आज तक घर का सारा स्याह-सफेद उसी के हाथ सौंप रक्खा था। वह जो चाहती थी, करती थी; और जो कहती थी, होता था। किसी को उसके काम में हस्तक्षेप करने की हिम्मत न थी। एक बार माँ ने बेटी की कोई बात टाल दी थी, इससे उसने रो-रोकर आँखें सुजा ली थीं, और लाला सुरजनमल ने उसे बड़े यत्न से मनाया था। और आज—वह इस घर को सदा के लिए छोड़कर अपना नया घर बसाने जा रही थी। लाला सुरजनमल की आँखों में पिघला हुआ प्यार लहराने लगा। आज उनके घर से बेटी नहीं जा रही, उनके घर की शोभा और रौनक जा रही है, उनके आँगन की बहार और बरकत जा रही है, जिसको उन्होंने भगवान से माँग-माँगकर लिया है, जिसको उन्होंने स्नेह से सींचा है, जिसपर उन्होंने अपनी जान छिड़की है।

(२)

सहसा उनकी स्त्री जमना आकर उनके सामने खड़ी हो गई और हाँफते हुए बोली—"दीनानाथ आपसे मिलने आया है।"

सुरजनमल जरा न समझे, कौन दीनानाथ। उन्होंने बेपरवाई से हुक्के का धुआँ हवा में छोड़ा और पूछा—"कौन दीनानाथ?"

जमना ने पति की तरफ अचरज-भरी आँखों से देखा, और जवाब दिया—"अब यह भी पूछने की बात है। यह देख लीजिए।" यह कहते-कहते उसने आगन्तुक के नाम का कार्ड पति के हाथ में दे दिया और स्वयं पास पड़ी कुर्सीपर बैठ गई।

सुरजनमल ने कार्ड देखा, तो जरा चौंके, और हुक्के की नली को हटाकर बोले—"इसका क्या मतलब है? ब्याह से पहले वह मेरे घर में कैसे आ सकता है?"

जमना ने भर्राई हुई आवाज में कहा—"क्या कहूँ, मुझे तो कुछ और ही सन्देह हो रहा है।"

लाला सुरजनमल उठकर खड़े हो गए और बाहर जाते-जाते बोले—"तुम तो ज़रा-ज़रा-सी बात में घबरा जाती हो। इतना भी नहीं समझतीं कि आजकल के लड़के अपनी रीत-रस्में नहीं जानते। विलायत से आया है। समझता होगा, यहाँ भी वैसी ही आजादी है। मिलने के लिए चला आया। उसकी बला जाने कि यहाँ ब्याह से पहले ससुराल में जाना बुरा माना जाता है।"

यह कहकर वह लपके हुए बाहर आए। दरवाजे पर दीनानाथ खड़ा था। सुरजनमल को देखते ही उसने सिर से अँगरेजी टोपी उतारी और हाथ बाँधकर नमस्ते किया।

सुरजनमल ने नमस्ते का जवाब देकर अपना हाथ उसके कन्धे पर रक्खा और धीरे से कहा—"बेटा! क्या करूँ? समाज के नियम मुझे आज्ञा नहीं देते कि तुम्हें ब्याह से पहले घर के अन्दर ले चलूँ, इसलिए मैं ही बाहर चला आया। कहो, कैसे आए। कोई विशेष बात तो नहीं?"

दीनानाथ ने जेब से रेशमी रूमाल निकालकर अपना मुंह पोंछा और जवाब दिया—"बात तो विशेष ही है, वर्ना मैं आपको कष्ट न देता। वैसे बात मामूली है। कम-से-कम मैं उसे मामूली ही समझता हूँ।"

सुरजनमल कुछ चिन्तित से हो गए—"तो भई! जल्दी कह डालो। मुझे उलझन होती है।"

दीनानाथ कुछ देर चुपचाप खड़ा सोचता रहा कि ये तो बिलकुल सड़े हुए खयाल के आदमी निकले। वर्ना इतना भी क्या था कि मुझे घर के अन्दर ले जाते हुए भी डरते। जैसे इस समय मैं बाघ हूँ, दो घड़ी के बाद आदमी बन जाऊँगा। दुनिया सैकड़ों और हजारों कोस आगे निकल गई है, ये महात्मा अभी तक वहीं पड़े करवटें बदल रहे हैं। वह समझता था, ससुर बड़ा आदमी है, हजार रुपया वेतन पाता है, अँगरेजी लिबास पहनता है, साहब लोगों से मिलता-जुलता है, जरूर स्वतंत्र विचारों का आदमी होगा। मगर यहाँ आया तब एक ही बात ने सारी आशा तय करके रख दी। दीनानाथ जो कहना चाहता था वह गले में अटकता हुआ, जबान पर रुकता हुआ, होठों पर जमता हुआ मालूम हुआ।

सुरजनमल ने फिर कहा—"मालूम होता है, कोई ऐसी बात है जिसे कहते हुए भी हिचकिचाते हो। मगर जब यहाँ तक चले आए हो तो अब कह भी डालो। तुम संकोच करते हो, मेरे मन में हौल उठता है।"

दीनानाथ ने रुक-रुककर जवाब दिया—"मैं लड़की देखने आया हूँ।"

सुरजनमल के सिर पर मानो किसी ने कुल्हाड़ा मार दिया। दो मिनट तक तो उनके मुँह से बात ही न निकल सकी। वे दीवार से एक फुट के फासिले पर खड़े थे। यह सुनकर दीवार के साथ लग गए, मानो अब उनमें खड़े रहने का बल न था। मुँह पर हवाइयाँ ऐसे उड़ रही थीं, जैसे अभी भूमि पर गिर पड़ेंगे।

दीनानाथ ने घाव पर मरहम लगाते हुए कहा—"मैंने लड़की की बहुत प्रशंसा सुनी है। मेरी भाभी का कहना है कि ऐसी बहू

हमारे कुल में आज तक नहीं आई। बाबू जी उसकी तारीफ करते नहीं थकते। मगर फिर भी आप जानते हैं, अपनी-अपनी आँख है, अपनी-अपनी पसन्द। कल को अगर न बने तो दोनों का जीवन नष्ट हो जाय। ऐसे दृष्टान्त हमारे शहर में सैकड़ों हैं। इधर लड़के अपने प्रारब्ध को रो रहे हैं, उधर लड़कियाँ अपने बाप के घर बैठी हैं। इसलिए मेरा तो खयाल है कि आदमी पहले सोच ले. ताकि पीछे हाथ न मलना पड़े। और इसमें कोई हर्ज भी तो नहीं। हर्ज तब था, जब पर्दे की प्रथा थी। अब पर्दा कहाँ?"

सुरजनमल ने अपने बिखरे हुए साहस को जमा करके कहा—"तुम आज तक कहाँ सोये हुए थे? मगर पहले कहते तो मुझे जरा भी आपत्ति न होती। उसी समय दिखा देता। अगर अब तो मुहूर्त भी नियत हो गया। बारात भी आ गई, सारा प्रबन्ध हो गया। इस समय तीन बजे हैं, आठ बजे व्याह है। अब क्या हो सकता है? मान लो, मैंने तुम्हें लड़की दिखा दी और तुमने उसे अस्वीकार कर दिया तो क्या व्याह रुक जायगा? तुम कहोगे इसमें हर्ज ही क्या है। तुम्हारे लिए न होगा, हमारी तो नाक कट जायगी। इसलिए यह लड़कपन छोड़ो और चुपचाप जनवासे को लौट जाओ।"

मगर दीनानाथ पर इस बात का जरा भी प्रभाव न पड़ा, रुखाई से बोला—"मेरी राय में तो साधारण बात है।"

सुरजनमल—"तुम्हारी राय में होगी, मेरी राय में नहीं है।"

दीनानाथ—"एक बार फिर सोच लीजिए।"

सुरजनमल—"बेटा! क्या बावलों की-सी बातें करते हो? जरा अपने आपको मेरी स्थिति में रखकर देखो और फिर बताओ। अगर तुम्हारी बहन का व्याह हो तो तुम क्या करो?"

दीनानाथ—"मैं तो दिखा दूँ।"

सुरजनमल—"शायद इसका यह कारण हो कि मैं उस कालेज में

नहीं पढ़ा, जहाँ तुम पढ़े हो। मुझे दुनिया का भी मुँह रखना पड़ता है।"

दीनानाथ—"तब बहुत अच्छा, मैं भी आपको अन्धकार में नहीं रखना चाहता। मैंने निश्चय कर लिया है कि चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय, मैं लड़की को देखे बिना ब्याह नहीं करूँगा।"

सुरजनमल की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। इस अँधेरे से बाहर निकलने का कोई रास्ता न था। सोचते थे, इस छोकरे ने बुरी जगह घेरा है। कोई दूसरा होता तो कान पकड़कर बाहर निकाल देते, मगर आज—वे बेटी के कारण वह सुन रहे थे जो आज तक कभी नहीं सुना था। बेटे और बेटी में आज उन्हें पहली बार भेद दिखाई दिया। आज उनके आत्मसम्मान में अपने पाँव पर खड़े होने का बल न था। आज उनके सामने उनका अपमान खड़ा उन्हें ललकार रहा था।

एकाएक उन्हें एक रास्ता सूझ गया। बोले—"तो एक काम करो। तुम्हारे पिता जी मध्यस्थ रहें। वे जो कुछ कह देंगे, मुझे मंजूर होगा।"

मगर दीनानाथ ने भी विलायत का पानी पिया था, भाँप गया कि बुड्ढे बुड्ढे एक तरफ हो जायँगे, मेरा दाव न चलेगा। उसने अपनी चोटी पर हाथ फेरते हुए कहा—"इस मामले में मैं किसी को भी मध्यस्थ नहीं मानता।"

अब चारों ओर निराशा थी। डूबते ने तिनके का सहारा लिया था। वह तिनका भी टूट गया। अब क्या करें? इस समय अगर कोई उनका हृदय चीरकर देखता तो वहाँ उसे एक आवाज सुनाई देती—"भगवान् किसी को बेटा न दे।"

दम के दम में यह खबर घर के कोने-कोने में फैल गई। ब्याह के दिन थे, दूर-नजदीक के सारे सम्बन्धी आए हुए थे। उनको

एक शीशा मिल गया, चारों तरफ काना-फूसियाँ होने लगीं। धनियों के सगे-सम्बन्धी उनकी बदनामी से जितना खुश होते हैं, उतना दुश्मन खुश नहीं होते। किसी में मुँह से बोलने का साहस न था, मगर मन में सभी खुश हो रहे थे कि चलो अच्छा हुआ। चार पैसे पाकर इसकी आँखों में चर्बी छा गई थी, अब होश ठिकाने आ जायँगे।

उधर उषादेवी शर्म से मरी जा रही थी, मगर कुछ कर न सकती थी। हिन्दू-घरों में क्वांरी कन्या के लिए ऐसे मामलों में मुह खोलना पाप से कम नहीं। देखती थी कि मेरे कारण बाप का सिर नीचे झुका जा रहा है, पर दम न मार सकती थी। दिल-ही-दिल में कुढ़ती थी और चुपके-चुपके रोती थी। इतने में उसकी मां जमना ने आकर भरे हुए स्वर में कहा—"तुझे तेरा बाप बुला रहा है।"

उषादेवी ने मां से कोई सलाह न किया और आंसू पोंछकर बाप के ड्राइङ्गरूम की तरफ चली। ड्राइङ्गरूम के दरवाजे पर उसके पांव जरा रुके। मगर दूसरे क्षण में उसने अपना मन दृढ़ कर लिया और अन्दर चली गई। वहां उसके बाप के अतिरिक्त एक और साहब भी बैठे थे। उषादेवी ने उसकी तरफ आंख उठाकर भी न देखा और बाप के पास जाकर खड़ी हो गई।

सुरजनमल ने कहा—"बेटी, बैठ जाओ। अपने ही आदमी हैं।"

उषादेवी ने सिर उठाया और एक कुर्सी पर बैठ गई; मगर इस हालत में कि उसे तन-बदन की सुध न थी। दीनानाथ ने देखा कि लड़की शक्ल-सूरत की बुरी नहीं है। और बुरी क्या, खूबसूरत है। बल्कि खूबसूरती के बारे में जो धारणा थी, उषादेवी उससे भी बढ़-चढ़कर थी। दीनानाथ कुछ देर उसकी तरफ देखता रहा; ठीक ऐसे ही जैसे हम किसी वस्तु के खरीदने से पहले देखते हैं। इसके बाद धीरे से बोला—"आपने अँगरेजी भी पढ़ी है क्या?"

उषादेवी मूर्खा न थी, सुनते ही समझ गई कि यही मेरा भावी पति है। मगर वह क्या करे? उसकी बात का क्या जवाब दे? मुँह में जीभ थी, जीभ में बोलने की शक्ति न थी। वह जिस तरह बैठी थी, उसी तरह बैठी रही, बल्कि जरा और भी दबक गई।

दीनानाथ ने सुरजनमल की तरफ देखा। सुरजनमल बोले—"बेटी! तुमसे पूछते हैं। जवाब दो।"

उषादेवी ने बड़े संकोच से और सिकुड़कर जवाब दिया—"पढ़ी है।"

दीनानाथ ने इधर-उधर देखा और लपककर मेज से उस तारीख का अखबार उठा लिया। इसके बाद उषादेवी के पास जाकर बोला—"जरा पढ़ो तो"। यह कहकर उसने अखबार उषादेवी के हाथ में दे दिया और नोट की तरफ इशारा करके स्वयं पतलून की जेब में हाथ डालकर कुर्सी के पीछे खड़ा हो गया।

उषादेवी ने थोड़ी देर के लिए सोचा, और इसके बाद सारा नो फर-फर पढ़कर सुना दिया।

दीनानाथ की आँखें चमकने लगीं। उसकी अपनी बहन भी अंगरेजी पढ़ती थी, मगर उसमें तो यह प्रवाह न था। चार शब्द पढ़ती थी और रुकती थी, फिर जोर लगाती थी और फिर रुक जाती थी, जैसे बैलगाड़ी दलदल से निकलने का यत्न कर रही हो। और फिर उसका उच्चारण कितना भद्दा था! मगर उषा इस पानी की मछली थी। ऐसा मालूम होता था, जैसे यह उसकी मातृभाषा है। दीनानाथ सन्तुष्ट हो गया और सुरजनमल की तरफ देखकर बोला—"इनका उच्चारण बड़ा साफ है। किससे पढ़ती रही हैं?"

सुरजनमल—"एक योरपीय औरत मिल गई थी।"

दीनानाथ—"बस बस बस!! अगर किसी हिन्दुस्तानी से पढ़तीं तो यह बात कभी न पैदा होती। इनका उच्चारण बिलकुल अगरेजों का

सा है। इन्हें पर्दे में बिठाकर कहिए, बोलें। बाहर कोई अँगरेज खड़ा हो। साफ धोखा खा जायगा। उसे जरा सन्देह न होगा कि कोई हिन्दुस्तानी लड़की बोल रही है।"

सुरजनमल पर नशा-सा छा गया। समझे, परीक्षा समाप्त हो गई। इतने में दीनानाथ ने दूसरा सवाल कर दिया—"इन्होंने कुछ गाना भी सीखा है?"

सुरजनमल—"जी हाँ।"

दीनानाथ—"तो कहिए, कुछ सुना दें।"

सुरजनमल का खून खौलने लगा, मगर कुछ कर न सकते थे। क्रोध को अन्दर-ही-अन्दर पी गए और ठण्डी आह भरकर बेटी से बोले—"कुछ सुना दो।"

और दूसरे क्षण में उषा की अंगुलियाँ बाजा बजा रही थीं, उसकी तानें कमरे में गूंज रही थीं और दीनानाथ खुशी और अचरज से झूम रहा था। मगर सुरजनमल आन्तरिक वेदना से मरे जा रहे थे, बाहर उनकी महमान स्त्रियाँ उनकी निर्लज्जता पर खुश होकर अफसोस कर रही थीं और कलजुग को गालियाँ दे रही थीं।

संगीत की समाप्ति पर दीनानाथ ने सिगरेट-केस से सिगरेट निकाला और उसे सुलगाने के लिए दियासलाई जलाते हुए बोला—"वान्डरफुल (आश्चर्यजनक)!"

सुरजनमल ने उपेक्षा-भाव से कहा—"कोई और बात पूछनी हो तो पूछ लो।"

उषादेवी का मुँह लाज से लाल हो गया और कान जलने लगे।

दीनानाथ ने सिगरेट सुलगाकर दियासलाई को हाथ के झटके से बुझाते हुए जवाब दिया—"और कोई बात नहीं। मुझे लड़की पसन्द है।"

सुरजनमल की जान में जान आई।

(३)

एकाएक उषादेवी अपनी कुर्सी से उठकर खड़ी हो गई और दीनानाथ की तरफ देखकर धीरे से, मगर निश्चयात्मक रूप में, बोली—"मगर मुझे तुम पसन्द नहीं हो।"

दीनानाथ के लिए एक-एक शब्द बन्दूक की एक-एक गोली से कम न था। मुँह ताकता ही रह गया। मगर पूर्व इसके कि वह कुछ बोले या सुरजनमल कुछ कहें, उषा ने फिर से कहना शुरू कर दिया—

"अगर तुम लड़कों को यह अधिकार है कि ब्याह से पहले लड़की को देखो, उसकी परीक्षा करो और इसके बाद अपना फैसला सुनाओ तो हम लड़कियों को भी यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि तुम्हें देखें, तुम्हें परखें, और इसके बाद तुम्हें अपना फैसला सुनावें। और मेरा फैसला यह है कि मैं तुम्हारे साथ कदापि ब्याह नहीं कर सकती।"

सुरजनमल दीनानाथ को नीचा दिखाना चाहते थे, मगर उनमें यह साहस न था। उषादेवी के वीर-भाव को देखकर उनका हृदय-कमल खिल उठा। ब्याह न होगा तो क्या होगा, दुनिया क्या कहेगी और वे उसका क्या जवाब देंगे? इस समय इनमें एक बात भी उनके सामने न थी। उनके सामने केवल एक बात थी। जिसने मेरा अपमान किया है, मेरी बेटी ने उसके मुँह पर तमाचा मार दिया। इसने मेरा बदला ले लिया। यह भी क्या याद करेगा?

दीनानाथ पानी-पानी हुआ जा रहा था। मगर चुप रहने से शर्म घटती न थी, बढ़ती थी। वह खिसियाना होकर बोला—"आपने तो मुझे परीक्षा के बिना ही फेल कर दिया।"

उषादेवी ने और भी जोर से कहा—मुझे तुम्हारी परीक्षा करने की आवश्यकता ही क्या है? इतना समझ गई हूँ कि मेरे और तुम्हारे

विचार इस दुनिया में कभी न मिलेंगे। मैं सोलहो आने हिन्दुस्तानी हूँ, तुम सोलहो आने विदेशी हो। मैं ब्याह को आत्मिक सम्बन्ध मानती हूँ, जो मौत के बाद भी नहीं टूटता। तुम्हारे समीप मेरा सब से बड़ा गुण यह है कि मेरा रंग साफ है और मेरे गले में लोच है। लेकिन कल को यदि मुझे चेचक निकल आए या किसी अन्य रोग से मेरा गला खराब हो जाय तो तुम्हारी आँखें मुझे देखना भी स्वीकार न करेंगी। तुम कहते हो, मैंने तुम्हारी परीक्षा नहीं की, मैं कहती हूँ, मैंने तुम्हें दो बातें से तोल लिया है। जिसकी पसन्द ऐसी ओछी और कच्ची बुनियादों पर खड़ी हो उसका क्या विश्वास? तुममें कितनी ही योग्यता हो, मगर तुममें मनुष्यत्व नहीं है। मेरे बाबू जी आज से तुम्हारे भी सम्बन्धी थे। तुमने इसकी जरा परवा नहीं की। उनके दिल पर छुरियाँ चल रही थीं और तुम अपनी जीत पर फूले न समाते थे। तुम्हें केवल अपना खयाल है, दूसरे का अपमान होता है तो हुआ करे। ज़रा सोचो, अगर यही सुलूक मैं तुम्हारे पिता जी के साथ करती तो तुम्हारा क्या हाल होता? आँखों से आग बरसने लगती, लहू खौलने लगता, ताज्जुब नहीं मुझे घर से निकालने पर भी उतारू हो जाते। ऐसे स्वार्थी, अन्याय प्रिय, तंग-दिल पुरुष के साथ जो स्त्री अपना जीवन बाँध ले, उससे बड़ी अन्धी कौन होगी?"

यह कहते-कहते उषा बाहर निकल गई।

दीनानाथ का ज़रा-सा मुँह निकल आया। सोचता था, क्या करूँ, क्या कहूँ। उषादेवी की न्यायसंगत और युक्तिपूर्ण बातों का उसके पास कोई जवाब न था। चुपचाप अपने पाँव की तरफ देखता था और अपनी अदूरदर्शिता पर पछताता था। मगर अब पछताने से कुछ बनता न था। उधर मुरजनमल की आँखें जीत की रोशनी से जगमगा रही थीं। वे सोचते थे, ऐसे नालायक के साथ जितनी भी हो, कम है। अब बच्चा जी को शिक्षा मिल जायगी। वे दुनिया और दुनिया की जबान से

बहुत डरते थे, मगर इस समय उन्हें इसाका जरा भ भीय न था। कुछ देर पहले दीनानाथ का रोष उनके लिए दैवी प्रकोप था, इस समय उन्हें उसकी जरा भी परवा न थी। आज उनके सामने आत्मसम्मान और निर्भयता का नया रास्ता खुल गया था, आज उनकी दुनिया बदल गई थी, आज पुराने जुग ने नये जुग में आँखें खोल ली थीं।

सुरजनमल उठकर धीरे-धीरे दीनानाथ के पास गए और मुँह बनाकर बोले—"मुझे बड़ा अफसोस है, मगर मैं कुछ कर नहीं सकता। जब लड़की ही न माने तो कोई क्या करे?"

दीनानाथ की रही-सही आशा भी जाती रही। समझ गया, जो होना था, हो चुका। थोड़ी देर बाद जब वह बाहर निकला तब जमीन-आसमाँ घूम रहे थे, और दुनिया में कहीं भी प्रकाश न था।

(४)

मगर माँ को बेटी की इस बेहयाई पर जहर चढ़ गया। रोती हुई उसके कमरे में जाकर बोली—"तूने मेरी नाक काट डाली। मैं कहीं मुह दिखाने लायक नहीं रही। लड़के ने दो बातें पूछ लीं तो कौन-सा अन्धेर हो गया? जवाब देती और चली आती। अब जब बारात लौट जायगी और घर-घर में हमारी बातें होने लगेंगी तब हमारे कुल का नाम रोशन हो जायगा! जिस लड़की की बारात लौट जाय उस लड़की का मर जाना भला।"

उषा दीवार के साथ लगी खड़ी थी, मगर कुछ बोलती न थी। चुपचाप माँ की तरफ देखती थी और सिर झुकाकर रह जाती थी।

इतने में सुरजनमल ने आकर उषा को गले से लगा लिया और जमना की तरफ अग्निपूर्ण दृष्टि से देखकर बोले—"खबरदार! अगर मेरी बेटी से किसी ने कुछ कहा तो। इसने वही किया है जो नये युग को

वीर कन्याओं को करना चाहिए और जो करने का हममें सामर्थ्य नहीं, मगर हम उसकी प्रशंसा भी न कर सकें तो यह डूब मरने की बात होगी। बाकी रह गया सवाल इसके ब्याह का। इसकी मुझे जरा चिन्ता नहीं। मेरी बेटी के लिए वर बहुत मिल जायँगे। अच्छे से अच्छा लड़का चुनूँगा।"

यह कहते-कहते उन्होंने उषा का माथा चूम लिया।

सुहागरात का उल्लू

लेखक—श्री० पंडित रामनरेश त्रिपाठी

नागपुर की काङ्ग्रेस के बाद की बात है। मैं स्वास्थ्य के लिए कई महीने मारवाड़ में बिताकर घर लौट रहा था, और दो-चार दिन जयपुर की सैर करने के लिए रास्ते में ठहर गया था।

मैं 'एडवर्ड मेमोरियल होटल' में ठहरा था। वहीं मेरा परिचय एक युवक से हुआ, जो कानपुर के जमींदार का लड़का था। उसकी अवस्था बीस-इक्कीस वर्ष की रही होगी: रङ्ग गोरा, शरीर पतला और

लम्बा, नाक लम्बी और नोकवती, चेहरा भरा हुआ, पर चेहरे पर प्रतिभा के स्थान पर बुद्धूपन की छाप अधिक स्पष्ट थी, जो पुराने ढङ्ग के जमींदारों के लड़कों की एक पैतृक सम्पत्ति सी होती है। थोड़ी सी अङ्गरेजी उसने पढ़ी थी, वही उसे भरमा रही थी, नहा तो ऐसे लड़के घर और गाँव की सीमा के बाहर शायद ही कभी, सो भी किसी मेले-ठेले में बन-ठनकर घर से निकलते हैं।

मेरा उसका दो दिन तक साथ रहा। मैं घूमने निकलता तो ताँगे पर उसे भी बैठा लिया करता था।

दूसरे दिन रामनिवास-बाग में एक घने वृक्ष की छाया में बैठकर उसने अपने उस छोटे से जीवन की एक मनोरञ्जक घटना मुझे सुनाई थी। उसके शब्द तो अब मुझे याद नहीं रहे, पर कथा याद है। लड़के का नाम और पता बताने की आवश्यकता मैं नहीं समझता हूँ। तब से अब तक उसकी समझदारी और स्वभाव में बहुत कुछ अन्तर आ चुका होगा। सम्भव है, अब वह बुद्धू न रहकर और बुद्धिमान हो गया हो, मैं तो केवल यह बताना चाहता हूँ कि वह उल्लू कैसे बना, जिससे और कोई उल्लू न बने। हाँ, कहानी के लिए लड़के का नाम मैं कुमुद रख लेता हूँ।

कुमुद ने आठवें क्लास तक अङ्गरेजी पढ़ी थी। अङ्गरेजी के साथ हिन्दी का भी साधारण ज्ञान उसे था। रईस का लड़का था, बाप का एकलौता बेटा था, लाड़-प्यार के झूले में दिन-रात झूलकर बड़ा हुआ था।

माँ-बाप आँखों से दूर रखना नहीं चाहते थे। आठवें दर्जे में फेल हो जाने से उसने स्कूल छोड़ दिया था।

धनीघरों के लड़के इस अर्थ में बड़े ही अभागे होते हैं कि जन्म ही से उनपर आवारा लोगों की कुदृष्टि रहती है। कुमुद को भी ऐसे साथी आप-से-आप मिल गए थे। एक तो जवानी दूसरे कुसंगति, एक

तो बुद्धूपन दूसरे अनियन्त्रित-सत्ता। कुमुद ने अपने को अच्छी तरह आवारा-साथियों के सुपुर्द कर दिया। साथी लोग तरह-तरह के आकर्षणों में फँसाकर उसकी जेब रोज ही निचोड़ने रहते थे।

१८ वर्ष की अवस्था में उसका विवाह हुआ था। विवाह के समय उसकी स्त्री की आयु तेरह-चौदह वर्ष की थी। और वह आठवें या नवें क्लास में पढ़ रही थी। उसके पिता ने इन्ट्रेन्स पास होने तक ससुराल नहीं जाने दिया था।

इक्कीसवें वर्ष के प्रारम्भ में कुमुद को यह मालूम हुआ कि उसकी स्त्री, जिसका नाम हम कहानी के लिए कुमुदिनी रख लेते हैं, इन्ट्रेन्स पास हो गई है, वह ससुराल आनेवाली है।

एक दिन दोपहर होते-होते वह आ ही गई।

सुहागरात मनुष्य के जीवन में एक अद्भुत घटना है, जिस दिन से दो अपरिचित धाराएँ एक होकर बहने लगती हैं।

कुमुद हफ्तों से सुहागरात के लिए तैयारी कर रहा था। नाई रोज हजामत बना जाता था; दरजी नये-नये कपड़े तैयार कर रहा था; गन्धी रोज तरह-तरह के इत्र दे जाता था; सङ्गी-साथी विनोद की बातें कर-करके उसके हृदय को हुलसाया करते थे।

घर के भीतर बहू के आने से पहले ही उनकी प्रशंसा पहुँच गई थी। नौकर-नौकरानियों को घर की मालकिन को खुश करने का एक मनोरंजक धन्धा मिल गया था।

एक दिन कुमुदिनी के साथ पढ़नेवाली एक लड़की कुमुद के घर आई। कुमुद की माँ और नौकरानियों ने उससे नई बहू के बारे में बहुत से प्रश्न पूछे। नई बहू की और सब बातें तो सबने हजम कर लीं, पर दो बातें उन्हें हजम न हो सकीं, एक तो यह कि वह अङ्गरेजी ही में बातचीत करना पसन्द करती है, दूसरी यह कि वह परदा नहीं

। कुमुद की माँ को, जो सास होने का स्वप्न देख रही थी, दोनों अप्रिय लगीं और वह कुछ शङ्कित सी हो गई।

नौकर-नौकरानियों ने नई बहू की गुण-गाथा कुमुद के आवारा ों तक भी पहुँचा दी। कुमुद को वे यह कहकर और छेड़ने लगे हू अङ्गरेजी बोलेगी, तब तुम क्या जवाब दोगे, तुम उसके बराबर ो हो नहीं।

बुद्धू कुमुद रोज डूबता चला जाता था। भीतर-ही-भीतर वह । भयभीत भी हो चला था। बहू के आने के दिन तो उसके ों की छेड़-छाड़ इतनी बढ़ गई कि उसे झेंप-सी आने लगी और के आकर्षण के बदले उसके मन पर उसकी अङ्गरेजी का ; छा गया। तब भी मन की धारा बिलकुल सूख नहीं गई थी। रात में बहू के प्रथम मिलन की लालसा युवक पति के लिए क्या ण बात है? झेंप, आतङ्क, लज्जा, सङ्कोच—सब मिलन-सुख ल्पना में बार-बार डूबते-उतराते रहते थे।

घर के अन्दर दिन भर गाना-बजाना होता रहा। मेल-जोल के स्त्री-- को अलग-अलग दावत दी गई थीं।

नई बहू को घेरकर महल्ले की कन्या, युवती, प्रौढ़ा, नवोढ़ा स्त्रियाँ और बातें करने लगीं। कुमुदिनी को उनके साथ बातें करने छ भी सङ्कोच नहीं था। वह पूर्वपरिचिता की भाँति बीच में ऐसी कता से बातें करती थी, जैसे कोई उपदेशिका स्त्रियों की किसी में। कुमुदिनी ने बातों-ही-बातों में अपनी जानकारी की सब उनके आगे उगल दीं। इस कला में वह प्रवीण हो चुकी थी। । की सीधी-सादी स्त्रियाँ बेचारी हक्की-बक्की-सी सुनती जाती थीं। नी ने यूरोप, अमेरिका के स्त्री-स्वातन्त्र्य का जिक्र किया। कपड़ा, , पोमेड, हेयर पिन, लिपस्टिक, पाउडर, जूता, स्लिपर, मनीबे-

उपन्यास, चाय, बिस्कुट आदि कोई खर्चीला विषय नहीं छूटा, जिसपर उसने कुछ-न-कुछ भाषण न किया हो।

घण्टे दो घण्टे में सबको उसने अपना लोहा मनाकर छोड़ा। सास बेचारी दूर बैठी उसकी वाचालता देखकर मन-ही-मन काँपती रही।

एक प्रौढ़ा ने घर से विदा होते समय धीरे से कहा—तीन राह के मुसाफिर एक ही सराय में आकर ठहर गए हैं, देखो कल क्या होता है?

बेचारा कुमुद महल्ले की स्त्रियों का भी शिकार हुआ। घर में आते-जाते जो कोई उसे मिली, सब ने कुछ-न-कुछ कहकर उसकी झेंप बढ़ा दी।

शाम हुई। कुमुद के पिता ने बहू के आने की खुशी में नाच-गान का समारोह किया था। रात के दस बजे तक तबला, सारङ्गी, सितार और मनुष्य के कण्ठ का संघर्ष चलता रहा।

दस बजते-बजते जब मेहमान और घर के लोग सोने चले गए, तब हिन्दू-पति को अपनी स्त्री के पास चोर की तरह जाने का अवसर मिला। सबके सो जाने पर, पैर की आवाज बचाते हुए चुपके-चुपके पत्नी के घर में चोर की तरह घुसना सिखाने के लिए कोई स्कूल नहीं है, पर इस प्रकार की चोरी का ज्ञान अनादि काल से हिन्दू-पुरुष को मिलता आ रहा है।

जब बाहर बैठक में गाना-बजाना हो रहा था, मालकिन घर में आई हुई स्त्रियों को खाने-खिलाने में व्यस्त थीं, तभी बहू खा-पीकर, दस बजे के पहले ही अपने कमरे में जाकर सो गई थी।

रात के दस बज चुके थे। ग्यारह निकट था। कुमुद धीरे-धीरे सबकी आँख और कान बचाता हुआ, बहू के कमरे की ओर चला। कमरे का दरवाजा उढकाया हुआ था। केवाड़ों के बीच में से उसने

झाँककर देखा, कमरे में बिजली का प्रकाश हो रहा था, पलंग पर बहू सोई हुई थी. कुमुद की छाती धक् धक्-धक् कर उठी। अगर बहू मुझसे अङ्गरेजी में बात-चीत शुरू करेगी तो मैं क्या जवाब दूँगा—यह भय का भूत विकराल रूप धारण करके उसपर सवार था। पर वह वहाँ से भागकर जाता किधर? कुमुद के चचेरे भाई की स्त्री तथा उसकी दो एक सहेलियाँ भी बरामदे में, खम्भे की आड़ में खड़ी-खड़ी मुसकुरा रही थीं; वह दरवाजे पर खड़े-खड़े देर ताक ताक-झाँक भी नहीं कर सकता था। अन्दर जाने के सिवा उसकी दूसरी गति ही नहीं थी।

धीरे से दरवाजा खोलकर वह अन्दर गया और फिर दरवाजे को बन्द करके उसने बिजली की बत्ती बुझा दी।

बिजली की बत्ती बुझते ही कुमुदिनी जाग उठी थी, अधिक सम्भव है वह सिर्फ लेटी हुई थी, सो नहीं रही थी। क्योंकि सुहागरात इस तरह सो जाने की नहीं होती। उसने उठते ही पूछा—कौन हैं?

कुमुद ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उत्तर देने की ढिठाई थी ही नहीं। चतुर कुमुदिनी शीघ्र ही समझ गई कि उसके पति के सिवा और कौन हो सकता है। उसने पलँग पर बैठे-ही-बैठे दूसरा प्रश्न जड़ दिया—रोशनी क्यों बुझा दी?

अब बुधू का कण्ठ फूटा। जल्दी में जवाब दे बैठे—तुमको देखने के लिए।

एक अङ्गरेजी पढ़ी हुई लड़की उत्तर-प्रत्युत्तर कभी चूक नहीं सकती। तत्काल उसने कह ही तो दिया—क्या तुम उल्लू हो, जो अँधेरे में देखते हो?

बात तो मौके की थी, पर कुमुद इस प्रश्न का क्या उत्तर देता! वह वहाँ ठहर न सका और झुँझलाया हुआ कमरे के बाहर हो गया।

कुमुद की सुहागरात की घटना सुनकर मुझे हँसी आई। मैंने

कहा—उसने तुम्हें उल्लू कहा और तुमने उल्लू बनकर दिखला भी दिया। अच्छा, फिर ?

कुमुद कहने लगा—वहाँ से निकलकर मैं सीधा बैठक में आया। अलमारी खोलकर कुछ रुपये लिए, कोट पहना, चुपके से घर से निकलकर स्टेशन पहुँचा और इलाहाबाद चला गया। वहाँ नागपुर काङ्गरेस के लिए वालंटियरों की भरती हो रही थी, मैं भी वालंटियर बन गया, और नागपुर भेज दिया गया।

मैंने कहा—काङ्गरेसवालों को पता नहीं रहता कि उसमें कैसे-कैसे उल्लू भी आ फँसते हैं।

कुमुद कहता ही गया—नागपुर काँङ्गरेस से मैं बम्बई गया। बम्बई में कई महीने घूम-फिरकर मैं एक गुजराती मित्र के साथ जयपुर आया हूँ।

मैंने पूछा—अब तब तुम्हारे माँ-बाप को खबर नहीं कि तुम कहाँ हो ?

कुमुद ने कहा—नहीं; अखबारों में मेरे पिता ने मेरे गायब होने का समाचार छपाया था और मेरा पता लगानेवाले को कुछ इनाम की घोषणा भी की थी, पर आज तक कोई मेरा पता न पा सका। मैंने माँ-बाप को जयपुर आने से पहले तक कोई पत्र नहीं दिया।

मैंने पूछा—जयपुर से तुमने शायद कोई पत्र भेजा है ?

उसने कहा—हाँ, पासके रुपये सब चुक गए। रुपये के बिना परदेश में काम नहीं चल सकता। मैंने पिता जी को लिखा है कि उस लड़की को घर से निकाल दो तो मैं घर आऊँ।

अब मैं सहम उठा। इतना कठोर दण्ड ? मैंने कहा—लड़की ने क्या अपराध किया था ?

वह आंखें फाड़कर मेरी ओर देखते हुए कहने लगा—अपराध ? मुझे उल्लू कहा, क्या यह कोई अपराध नहीं ?

मैंने कहा—पर तुमने भी तो उल्लू-सा जवाब दिया था। अंधेरा करके तुम भला उसे कैसे देखते ?

कुमुद ने कहा—मैं चाहे जो कुछ कहूँ, मेरी स्त्री को मेरे सामने जीभ नहीं हिलानी चाहिए।

मैंने देखा कि उसके कष्ट का मूल कारण हिन्दू-परिवार की रूढ़ियाँ और उचित शिक्षा का अभाव है। उधर बहू अपनी वाचालता से विवश थी। योग्यता-प्रदर्शन के लिए तत्काल उत्तर देने की स्कूल में जो उसकी आदत पड़ गई थी, उसका यह परिणाम निकला। स्कूल में यदि उसे हाजिर-जवाबी के साथ-साथ नम्रता, सुमधुर विनोद-प्रियता और सरलता की शिक्षा दी गई होती तो वह पति को उल्लू कहने की अपेक्षा स्वयं पलंग से उठकर स्विच के पास जाती और बिजली जलाकर पति के सामने खड़ी हो जाती और कहती—अब उजाले में देखो, अंधेरे में क्या देखोगे ? घबड़ाये हुए बेचारे पति को इस युक्ति से सान्त्वना ही नहीं मिलती, उसकी झेंप भी मिट जाती, और यह दुखःदायी घटना न होने पाती। पता नहीं, हमारे समाज-सुधारक इस कहानी में किसका पक्ष लेंगे।

मैंने कुमुद से पूछा—अब तुम्हारा क्या इरादा है ?

कुमुद ने कहा—मैं तो उस स्त्री का मुँह भी नहीं देखना चाहता। जब तक वह उस घर में रहेगी, तब तक मैं घर नहीं जाऊँगा।

मैंने उसे बहुत समझाया और यह भी कहा कि चलो, तुमको मैं तुम्हारे घर पहुँचा दूं, पर वह किसी बात पर राजी न हुआ।

दो दिन जयपुर रहकर मैं प्रयाग चला आया। कुछ दिनों के बाद सुना कि कुमुद के पिता ने कुमुदिनी को घर से अलग करके उसके खर्च के लिए कुछ मासिक बाँध दिया और कुमुद को घर बुला लिया। कुमुद का दूसरा विवाह एक अपढ़ लड़की से हुआ और सुना है कि वे दोनों सुखी हैं।

जेंटलमैन

लेखक—आचार्य श्री० चतुरसेन शास्त्री

कहिए क्या आपने कभी कोई जेंटलमैन् देखा है? जेंटलमैन बीसवीं शताब्दि की न्यामत है। वह बीसवीं शताब्दि का मूर्तिमान अवतार है। वह जन्मजात प्रतिष्ठित जन्तु है। उसके बहुत से रूप हैं—बहुत से हथकण्डे हैं। उसमें अच्छा-बुरा जो भी बातें हैं गुण ही गुण हैं। अवगुण को उसने शब्दकोष से बहिर्गत कर दिया है। वह जगन्वन्द्य महापुरुष है। उसके लिए बीसवीं शताब्दि में सब कुछ गम्य है।

जेंटलमैन को पहिचानना बहुत कठिन है। पर आप जब किसी आदमी को सिर से पैर तक साहबी ठाठ से भरपूर देखें, जिसकी मूछें या तो सफाचट हों या दीमक-चट, जो बात-बात में मुस्कुराकर नम्रता से 'थैंक यू' कहे—स्त्रियों के, खासकर युवतियों के, सामने बाकायदा जमनास्टिक की कसरत दिखावे, मुँह से धुँआ उगलता रहे, बस समझ लीजिए अद-बदकर वही जेंटलमैन है।

सतयुग के अन्त में सत्तासी हजार ऋषियों के बीच महाज्ञानी श्री काकभुशुण्डजी महाराज ने जेंटलमैन का इस प्रकार वर्णन किया था कि ऋषियो, कलियुग में एक जेंटलमैन नाम का जीव जन्म लेगा, वह सब पदार्थों का भक्षण करेगा, उसे भय और नीति का भय न होगा, वह परमेश्वर की शक्ति से इन्कार कर देगा, उसके लिए कुछ भी

अशक्य न होगा, वह कामवेशी होगा, वह केवल भूठ बोलेगा ही नहीं—भूठे काम को सत्य करके दिखावेगा। उसका शास्त्र फाउन्टेन-पेन होगा। लोक-लिहाज से बचने को और शील से आँखों की रक्षा करने के लिए वह सुनहरी कमानी का चश्मा आँख पर चढ़ाए रहेगा। उसका युद्धस्थल दफ्तर होगा। वह कागज के घोड़े पर सवार होकर भूमण्डल पर विचरण करेगा। उसकी जमा-पूंजी सब जबान में होगी। वह पराये धन का महायज्ञ करेगा। उसका रक्षा-कवच लिमिटेड कम्पनी होगा। वह अखबारों की तोप से मदद लेगा। उसके पास कुछ भी न होगा, फिर भी वह लाखों रुपये खर्च कर सकेगा। वह कानून का पुतला होगा, इसलिए कानून उसका कुछ न कर सकेगा। वह महात्यागी और महास्थित पूज्य होगा, हानि-लाभ में एकरस रहेगा। हे ऋषियो, वह बीसवीं शताब्दि का एक विभूतिरूप होगा। जो कोई उसका दर्शन करेगा या जिसका उससे सम्बन्ध होगा, उसका महाकल्याण हो जायगा।

(२)

दिल्ली स्टेशन के कपूर के 'हिन्दू रेस्टोराँ' में एक जेंटलमैन बैठे मुह से धुँआ उगल रहे थे। इनके आगे ब्रांडी का गिलास और वर्फ, सोडा आदि सामान धरा था। जेंटलमैन महाशय छत पर सरसराते पंखे पर नजर जमाए धुँआ फेंककर मानों पङ्खे पर जादू-सा कर रहे थे।

थोड़ी देर बाद तीन व्यक्तियों ने रेस्टोराँ में प्रवेश किया। जेंटलमैन ने कुर्सी से उठकर उनमें से एक व्यक्ति की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—हल्लो मिस्टर दास, हियर यू आर।

दास ने हाथ मिलाते हुए मुस्कुराकर अपने मित्रों का परिचय देते हुए कहा—

'आप मेरे परम मित्र, सेठ लक्ष्मीदास राजोड़िया, और आप मेरे पुराने सहपाठी डा० सिन्हा साहेब!'

जेंटलमैन ने बारी-बारी से दोनों से हाथ मिलाकर कहा—'आप साहबान से मिलकर अजहद खुशी हुई, बैठिए!'

सब के बैठने पर जेंटलमैन ने बैरा से सङ्केत किया। आनन-फानन चाय-केक-टोस्ट-अण्डा और न जाने क्या-क्या टेबिल पर चुन दिया गया। तीनों दोस्त हाथ साफ करने लगे। सिर्फ सेठ जी कोरे रह गए। बहुत आग्रह करने पर भी उन्होंने किसी वस्तु को नहीं छुआ।

बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ। मिस्टर दास ने कहा—'मेरे परम मित्र सेठ साहेब को इधर शेअर और रुई में बहुत नुकसान हुआ है। ये बम्बई के करोड़पति व्यापारी हैं। इन्हें आप कोई ऐसी युक्ति बताइए कि पौ-बाहर हो जाय।' जेंटलमैन ने चश्मे के भीतर से पहले सेठ जी और फिर मिस्टर दास को घूरकर, एक घूट चाय पीकर कहा—'यह कौन मुश्किल बात है। साहबान, मैं एक जेंटलमैन हूँ और आप जानते हैं, जेंटलमैन दोस्तों के लिए जान को भी कुछ चीज नहीं समझते।'

मिस्टर दास—बेशक, आप इस वक्त सेठजी को कोई ऐसी युक्ति बतावें कि कुछ लाभ हो। सेठजी आपसे कभी बाहर नहीं हो सकते।

जेंटलमैन ने गम्भीर होकर कहा—वाह! यह भी कोई बात है, क्या दोस्तों से भी मुआवजा लिया जायगा।

सेठ जी ने दाँत निकालकर कहा—इसमें मुआबजे की क्या बात है। पर मित्रों की शक्ति भर सेवा करना भी मित्रों का काम है।

जेंटलमैन ने शिष्टाचार की भावभङ्गी प्रकट करने के बाद कहा—खैर, तो आप एकदम कोई बड़ी रकम जेब में डालना चाहते हैं या माहवारी आमदनी बढ़ाना चाहते हैं?

सेठ जी जवाब देने में संकोच करने लगे। इतने में डा० सिन्हा ने

कहा—'अजी दोनों, और जरा इस दोस्त का भी ख्याल रखिए। सेठ जी को बड़ा और मेरे लिए एक छोटा-सा नुस्खा तजवीज कर डालिए।' सिन्हा साहब यह कहकर हँस दिए, परन्तु जेंटलमैन महाशय कुछ देर तक गम्भीरता से सोचते हुए बोले—'आपने कहा था न कि आपकी बम्बई में काफी जायदाद है?'

'जी हाँ, एक कपड़े का मार्केट मेरी निजी सम्पत्ति है। परन्तु उसके किराये की आमदनी बहुत कम है।'

'कम? अजी बम्बई में किराया कम? आप यह क्या फर्माते हैं?'

'शायद आपको मालूम नहीं कि बम्बई में एक ऐसा कानून बना हुआ है कि सन् १९१६ से प्रथम के जो किरायेदार हैं, उन्हें न मालिक निकाल सकता है, न किराया बढ़ा सकता है। वे मकान के मौरूसी मालिक बने हैं।'—सेठजी ने गम्भीरता से कहा।

'ठीक, परन्तु सन् सोलह और अब के किरायों में तो जमीन आसमान का अन्तर है?'—जेंटलमैन ने सेठ जी से आँखें लड़ाकर कहा।

'बेशक, सन् १६ में जो मकान ५०) रुपये किराये का था और अब तक है, नया किरायेदार उसके ३००) रु० किराया दे सकता है। अफसोस तो यह है कि किरायेदार तो हजारों रुपये रिश्वत लेकर दूसरों को मकान किराये पर दे सकते हैं, परन्तु मालिक मकान नहीं। असल में मालिकों की मौत है?'—यह कहकर सेठजी ने ठण्डी साँस भरी।

जेंटलमैन ने चाय का घूँट पीते हुए कहा—'क्या किसी रीति से भी मकान खाली नहीं कराया जा सकता?'

'एक ही हालत में, यदि मकान को गिराकर फिर से बनाने का म्युनिसिपैलिटी नोटिस दे।'

'हूँ, समझा'—जेंटलमैन ने भृकुटी में बल डालकर सिर हिलाया।

फिर कहा—'क्या आपको यकीन है कि आपका सब मार्केट खाली हो जाय तो आपको नये किरायेदार तुरन्त मिल जायँगे ?'

'वाह ? मिल जायँगे क्या ? तुरन्त मेरी ८० हजार रुपया माहवारी की आमदनी बढ़ जायगी ।'

'८० हजार रु० को ?'

'जी हाँ ।'

कुछ देर में जेंटलमैन ने सोचकर कहा—'क्या आप एकाध दूकान मुझे दे सकते हैं ?'

'मैं आपको तीस दूकानें दे सकता हूँ, वे मेरी अपनी दूकानें हैं ।'

'क्या वे कपड़े की हैं ?'

'जी हाँ ।'

'उनमें कितना माल है ?'

'लगभग एक लाख रुपये का । हम लोग गोदाम अलग रखते हैं ।'

'ठीक, आपको अगले वर्ष मार्च महीने से यह ८० हजार रुपये माहवार की नई आमदनी मिलने लगेगी ?'

'क्या आप सच कह रहे हैं ?'

'झूठ से फायदा ?'

'यदि ऐसा हुआ तो मैं आपको नकद १० लाख रुपये दूँगा ।'

'जेंटलमैन ने हँसकर कहा—'देखा जायगा । हाँ, आप एकमुश्त भी तो रकम चाहते हैं ?'

'जी हाँ, चाहता तो हूँ ।'

'एक करोड़ रुपया काफी होगा ?'

'क्या आप मजाक कर रहे हैं ?'

'नहीं, यह रुपया आपको आज से तीन मास बाद मिल जायगा ।'

सब मित्र आश्चर्य-चकित थे । जेंटलमैन ने चाय का प्याला आगे

को सरकाकर उठते हुए कहा—'अच्छा अब गुडबाई, आपको एक हफ्ते में बम्बई में मिलूँगा, मि० दास भी साथ होंगे और मिस्टर सिन्हा, आप का छोटा-सा नुस्खा भी वहीं लिख दिया जायगा।'

(३)

एक सप्ताह बाद चारों मित्र बम्बई में सेठ जी के एकान्त कमरे में बैठे थे। चाय और जलपान उनके सम्मुख था। सबकी दृष्टि जेंटलमैन के मुख पर थी। जेंटलमैन ने गम्भीर मुखमुद्रा से कहा—'देखिए सेठजी, आप क्या सोलह आने मेरा विश्वास करते हैं?'

'करता हूँ।'

'तब आप वचन दीजिए कि मैं जो कहूगा आप करेंगे।'

'ऐसा ही होगा।'

'मैं आशा करता हूँ कि हमारे ये दोनों मित्रगण भी हमारे उद्योग में सम्मिलित रहेंगे और लाभ उठावेंगे?'

दोनों ने उत्सुकता से कहा—'अवश्य।'

जेंटलमैन ने मुस्कुराकर कहा—'डा० सिन्हा साहेब का छोटा-सा नुस्खा भी उसी में बन जायगा।'

डाक्टर ने हँसकर कहा—'यह तो बहुत ही अच्छी बात है।'

'खैर तो आप तैयार हैं, मैं काम शुरू करूँ?'

'कीजिए।'

'बहुत अच्छा! अपनी वे तीनों दूकानें मय माल के मेरे दोस्त मि० दास और डा० सिन्हा को बेची कर दीजिए। रुपया भरपाई की रसीद दे दीजिए और समझ लीजिए कि यह आपका एक लाख रुपया जलकर खाक हो गया। कहिए आपको पशोपेश तो नहीं?'

सेठजी घबड़ाकर जेंटलमैन की तरफ देखने लगे। उन्होंने कहा—'आप अपना उद्देश्य तो कहिए?'

'जनाब, मैं किसी के सामने कभी कैफियत नहीं देता।'—वे अपना टोप सम्हालकर उठने लगे।

सेठजी ने अनुनय से कहा—'आप तो नाराज हो गए। आप जानते हैं लाख रुपये की जोखिम है। सोचने की जरूरत है।'

'आप करोड़ों यों ही पैदा करना चाहते हैं, जाइए सोच-सोचकर जान खपाइए। मैं चलता हूँ।'

सेठजी ने उठकर उनका हाथ पकड़कर कहा—अच्छा मुझे मंजूर है। और कहिए?

जेन्टलमैन ने जेब से एग्रीमेन्ट का ड्राफ्ट निकालकर कहा—इस पर दस्तख़त करके यह काम ठीक कर दीजिए। सेठ जी ने दस्तख़त कर दिए।

उस काग़ज को जेब में डालकर जेंटलमैन ने कहा—यह एक काम हुआ—अब दूसरा काम यह कि आप तमाम मार्केट का २ करोड़ रुपये का आग का बीमा करा डालिए।

सेठ जी ने भयभीत दृष्टि से जेंटलमैन को घूरकर कहा—आपका इरादा क्या है?

'यही कि मैंने जो कहा है उसे पूरा कर दिखाऊँ। कल मि० दास आपसे दूकान का चार्ज लेने जावेंगे और कल ही आप बीमा की भी कुल कार्यवाही खतम कर डालेंगे।'

सेठ जी ने स्वीकार किया।

जेंटलमैन ने भेद-भरी दृष्टि से देखते हुए सेठ जी से कहा—डा० सिन्हा की राय है कि इधर आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है, आप सपरिवार काश्मीर एक-दो मास के लिए चले जाइए। कल आप सब काम खतम करके परसों फ्रन्टियर मेल से रवाना हो सकते हैं।

सेठजी ने घबड़ाकर कहा—स्वास्थ्य तो मेरा बहुत अच्छा है और मैं अभी पञ्जाब से आ रहा हूँ।

जेंटलमैन ने तीखी वाणी से कहा—परन्तु डाक्टर की राय के मुकाबले आपकी राय कुछ गिनती में नहीं है। फिर आप मुझे वचन दे चुके हैं। आपको उसका पालन करना चाहिए।

सेठ जी ने धीमे स्वर में कहा—आपका इरादा मैं कुछ-कुछ समझ गया हूं। आप बड़े खतरे का काम कर रहे हैं।

'समझ गए हैं तो अच्छी बात है, खतरोंसे हम नहीं डरते। आपको खतरों से दूर रखने ही के लिए मैं आपको भेज रहा हूँ।'

'अच्छी बात है, मुझे स्वीकार है।'

जेंटलमन उठ खड़े हुए, तीनों मित्र भी उठे। जेंटलमैन ने हाथ बढ़ाते हुए सेठजी से कहा—अब स्टेशन पर परसों आपसे मुलाकात होगी। बीमा के कागजात अपने सालीसीटर को दे जाइए और एक परिचय-पत्र मेरा उनके नाम लिखकर मुझे देते जाइए, आवश्यकता होने पर मैं उनसे मिल लूँगा।

इतना कह मित्रों सहित जेंटलमैन विदा हुए। सेठ जी घबराहट के मारे कमरे में टहलने लगे।

(४)

तीनों मित्र एक होटल के एकान्त कमरे में बैठे थे। दास ने कहा—
'क्या आज ही ?

'हाँ, तुमने कहा न कि दूकान की उघरानी का १॥ लाख रुपया आ गया है ?'

'पर वह उघरानी का नहीं है, अढ़तियों की रकम है।'

'ओह, इससे कोई बहस नहीं, उसका पेमेन्ट दूकान कर देगी। लाओ वे रुपये कहाँ हैं ?'

दास ने नोट निकालकर सामने रख दिए। उसमें से १० हजार के नोट मि० सिन्हा के हाथ पर रखते हुए मि० जेंटलमैन ने कहा—'मि०

सिन्हा, यह आपका वह छोटा-सा नुस्खा है।' और ४० हजार मि० दास को देकर कहा—'यह १॥ महीने का वेतन है?' शेष १ लाख जेब में रखकर बोले—'दूकान में माल कितना होगा?'

'८० हजार का होगा ही।'

'जाने दो। हाँ, तो मि० सिन्हा मतलब समझ गए न? बिजली का करेन्ट आफ करके बीच में तार को काटकर बड़ा कर दो और परस्पर मिला दो।'

'यह तो बहुत मामूली काम है'—सिन्हा ने कहा।

'बेशक, परन्तु यह ठीक लड़की के सितून के ऊपर करना होगा, जिससे तार जलते ही आग झट से बैठ जाय।'

'ऐसा ही होगा।'

'तब आप जाइए और अपना काम खतम करके चले आइए।'

'क्या स्विच स्टार्ट कर आऊँ?'

'तब क्या? सब कुछ आज ही होना चाहिए और मि० दास, तुम अपनी पार्टी को तैयार रक्खो, यह मामूली घटना न होगी, शहर में तहलका मच जायगा।'

मि० दास ने भयग्रस्त होकर कहा—मि० जेंटलमैन, सावधानी से सब बातों पर विचार कर लो, जल्दी न करो, बड़ा भयानक काम है।

मि० जेंटलमैन ने उठते हुए कहा—अब हम तीनों रात को १२॥ बजे बाजार में मोड़ पर मिलेंगे। उस समय तक वहाँ आदमियों की भारी भीड़ लग चुकी होगी। ठहरो, जगह ठीक करना चाहिए। वह जो रेस्टोराँ है, वहीं! पर खबरदार, हम लोग पृथक्-पृथक् टेबिलों पर बैठे होंगे।

तीनों मित्रों ने नेत्रों में विचार-विनिमय किया, और तीनों अपनी-अपनी राह लगे।

(५)

कपड़े के मार्केट में आग लगना एक प्रलयङ्कारी दृश्य था। घनी बस्ती के बीच में यह मार्केट था। कुल मार्केट में ८०० कपड़े की दूकानें थीं, मनुष्यों और माल से भरपूर—उनमें करोड़ों का माल भरा था। मार्केट में आग लग जाने की खबर बात की बात में नगर भर में फैल गई। सभी स्थानों की आग बुझानेवाली गाड़ियाँ आ गईं। नगर भर की पुलिस और घुड़सवार पल्टनों का बन्दोवस्त हो गया। परन्तु मिस्टर दास की पार्टी को सब भेद प्रकट था। वह ठीक स्थानों पर पहुंच गई थी। तिजोरियों के तोड़ने की व्यवस्था उनके साथ थी, और जब सर्वत्र हाहाकार मचा था, फायरब्रिगेडवाले पुलिस और सेना की सहायता से माल को निकालने और आग बुझाने में जान-जोखिम सह रहे थे, मि० दास की पार्टी अनगिनती नोटों के गट्ठर बटोर रही थी—पास के रेस्टोराँ में तीनों दोस्त क्षण-क्षण में सूचना पा रहे थे।

आग बुझाने में आठ दिन लगे। सारा मार्केट जलकर राख हो गया। दूकानदार हाय करके बैठ रहे। जिनका बीमा था उन्हें कुछ सन्तोष था। वह दारुण समाचार सुनते ही सेठ जी काश्मीर से भाग आए। खाक स्याह मार्केट को देखकर ज़ारज़ार रोने लगे। लोगों की भीड़ चारों तरफ जमा थी। कोई कुछ कह रहा था, कोई कुछ। सेठ जी पर सब करुणा की कोर से देख रहे थे। लोगों मन में दया का समुद्र उमड़ रहा था। सहानुभूति के शब्दों की बौछार हो रही थी। सेठ जी सुसकियाँ ले रहे थे। तीनों मित्र बगल में खड़े थे। मि० जेंटलमैन मुस्कराते हुए सिगरेट पी रहे थे। एकाएक उन्होंने सिगरेट फेंककर सेठ जी का कन्धा छूकर कहा—'अब रञ्ज-फिक्र छोड़िए सेठ जी, आगे की बात सोचिए। जो होना था हो गया।' उन्होंने एक

भरी दृष्टि सेठ जी पर डाली। चारों दोस्त चले आए। घर के एकान्त कमरे में बैठकर सेठ जी ने कहा—'अब ?'

'अब क्या? करोड़ रुपया बीमे का वसूल कर लीजिए और झट-पट नये डिजाइन का एक भव्य मार्केट बनवा डालिए। आनन-फानन भर जायगा।'

इसके बाद कुछ गोपनीय परामर्श करके मिस्टर जेंटलमैन बाहर आए।

(६)

नया मार्केट बन गया। उसमें सिर्फ ४० लाख रुपया खर्च हुआ। ६० लाख रुपया सेठजी को बच गया। इधर एक लाख रुपया महीना किराया आने लगा। मिस्टर जेंटलमैन को इस धन्धे में लूट की बेशुमार दौलत के अलावा 10 लाख रुपया सेठ जी से इनाम मिला। अब वे गुड़ पर चिउँटे की भाँति चिपक रहे थे। सेठ जी उसकी योग्यता के कायल थे; दोनों दोस्त भी चूर-चार से पेट भर रहे थे।

चारों दोस्त बैठे थे। नन्हीं-नन्हीं बूँदें पड़ रही थीं। मेज पर चाय और खाने की वैष्णवी चीजें धरी थीं। सेठ जी बोले—मिस्टर जेंटलमैन, कुछ धन्धा नया किया जाय जिससे १०-२० लाख रुपया फोक में पैदा हो जाय।

मिस्टर जेंटलमैन ने हँसकर कहा—कौन बड़ी बात है! यह रुपया कब तक आपको चाहिए?

'ज्यादा से ज्यादा दो महीने में गर्मी शुरू होने पर तो काश्मीर जाने का इरादा है।'

'अच्छी बात है'—उन्होंने जेब से फाउन्टेन पेन निकालकर नोटबुक का एक पन्ना फाड़कर कहा—'सेठ जी, कल्पना कर लीजिए कि हम लोग एक लिमिटेड कम्पनी बनाने जा रहे हैं, उसका मूलधन ५० लाख होगा।

उसमें रेशम काता जायगा—वह बड़े मुनाफे का धन्धा है। आप सेठ जी, १० लाख के शेअर खरीद लीजिए।'

सेठजी ने अकचकाकर कहा—क्या मैं?

'जी हाँ'—फिर उन्होंने नोटबुक में कुछ लिखते हुए कहा—'और मिस्टर दास, ५-५ लाख का हिस्सा हम तीनों का हुआ। लो, आधे शेअर तो बिक गए। ५ लाख को रिजर्व रखते हैं, सिर्फ २० लाख के बेचते हैं। १०० के शेअर होंगे, तीन किश्तों में रुपया लिया जायगा। एक चौथाई पेशगी। निकालिए चिक, एक चौथाई रुपया अभी दे दीजिए।'

मिस्टर जेंटलमैन अपनी नोटबुक में लिखते जाते थे और बात करते जाते थे। दोनों मित्र हैरान थे। सेठ जी टक-टक देख रहे थे। मित्रों को पशोपेश करते देख मिस्टर जेंटलमैन ने कहा—यारो, घबड़ाते क्यों हो, आप लोगों की एक पाई भी तो खर्च नहीं होगी।

उन्होंने स्वयं १। लाख का चिक काटकर सामने फेंक दिया। सेठ जी और मित्रों ने भी चिक काट दिए। ६। लाख के चिक हो गए। उन्हें रद्दी कागज के टुकड़ों की भाँति मि० दास के आगे फेंककर उन्होंने कहा—'मि० दास, आप इस कम्पनी के मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर हुए। हजार रुपये माहवारी आपको तनख्वाह मिलेगी। आप मेरे सालीसीटर के यहाँ चले जाइए, कुल कागजात तैयार करके कल ही कम्पनी रजिस्ट्री करा देंगे। फिर आप एक अच्छी जगह पर आफिस किराये पर ले डालिए। अब हम पहिली डाइरेक्टरों की मिटिङ्ग होने पर फिर मिलेंगे।'

मि० जेंटलमैन उठ खड़े हुए। दोनों मित्र भी उठ चले। मिस्टर दास से चलती बार उन्होंने कहा—घर पर आना, मैं सब समझा दूँगा।

(७)

'धनजी सिल्क स्पिनिङ्ग कम्पनी लिमिटेड' का पटिया उसी सप्ताह दफ्तर में लग गया। आवश्यक मेज-कुर्सियाँ बिछ गईं। कागजात भी छप गए। आफिस में मिस्टर दास और मिस्टर जेंटलमैन बैठे थे। थोड़ी देर में डाक्टर सिन्हा भी तशरीफ ले आए।

उनके आते ही मिस्टर जेंटलमैन ने कहा—मिस्टर सिन्हा, अब आपको सब कुछ करना पड़ेगा। सुनिए, आपको ३०-४० आदमी निरन्तर शेअर बाजार में भेजने पड़ेंगे, जो चाहे भी जिस भाव पर हमारी कम्पनी के शेअर खरीद लावेंगे। मिस्टर दास आपको ५० हजार रुपये रोज देंगे। ये रुपये आप उन लोगों को बाँट देंगे। वे कम से कम ५० हजार रुपये रोज के शेअर खरीद लावेंगे।'

'आप समझ गए न मिस्टर दास?'

'समझ तो गया; परन्तु रोज ५० हजार रुपया दूंगा कहाँ से? और कब तक?'

मिस्टर जेंटलमैन ने मुस्कुराकर कहा—'वाह, ये रुपये रोज ही आपके पास लौट आवेंगे—दस-पाँच की कमी-ज्यादती रहेगी?'

'यह किस तरह?'

'इस तरह कि जब मिस्टर सिन्हा के आदमी शेअर बाजार में अपनी कम्पनी के शेअरों की खरीद करेंगे, शेअर बाजारवाले अवश्य ही आपको फोन करके शेअर मँगाकर रखेंगे तथा बेचेंगे—वे सब रुपये आपको मिलेंगे। सिर्फ आप उन लोगों को दलाली देंगे। यह आप उनसे तय कर लीजिए।'

मिस्टर दास हँसकर बोले—'यह तो समझ गया। परन्तु इससे हमें क्या लाभ होगा?'

'यह खेल १०-२० दिन चलता रहेगा। दिन-दिन नये-नये ग्राहक

मिस्टर सिन्हा बाजार में भेजते रहेंगे। जब बाजार में यह प्रसिद्ध हो जायगा कि अमुक कम्पनी के शेअरों की बाजार में बहुत खपत है, तब आप बाजार में शेअर भेजने से इन्कार कर देना, और प्रकट कर देना कि अब बेचने के लिए शेअर नहीं हैं।'

'इसके बाद?'

'इसके बाद, मिस्टर सिन्हा के आदमी तो बाजार में सरगर्मी से फिरते ही रहेंगे—वे १०५ तक में शेअर खरीद करने को तैयार हो जायँगे।'

'तब?

'बस, ज्यों हीं शेअर का भाव बोर्डपर चढ़ा और बाहरी ग्राहक टूटे। लोग मूर्ख तो हैं ही। यह कोई नहीं पूछता कि कौन कम्पनी कहाँ है, क्या हालत है। बस जिसके शेअर की दर बढ़ गई उसपर टूट पड़ते हैं। बस हम लोग आपस में ही १२०-१२५ तक बाजार-भाव कर देंगे। और जब देखेंगे कि बाहरी आदमी खरीद रहे हैं, अपने तमाम शेअर बेच डालेंगे।'

मिस्टर दास की आँखें चमकने लगीं। उन्होंने कहा—'बाहरी आदमी क्या अन्धे हैं जो बिना देखे-भाले अपना रुपया फेंक देंगे?

'अन्धे! आप अन्धे कहते हैं, मैं कहता हूँ वे उल्लू के पट्ठे हैं। आपको यह भेद मालूम नहीं। यह तो आप जानते हैं कि बम्बई का सट्टा जगद्विख्यात् है और सब लोग जानते हैं कि बम्बई के अमीरों का एकमात्र धन्धा सट्टा है। जो लोग जरा अपने को चालाक समझते हैं, वे बम्बई में आकर खर्च बना लेने की फिक्र में रहते हैं। यहाँ के यार-दोस्त उन्हें रुई, सोना या शेअर का सट्टा करने की सलाह देते हैं। शेअर के बाजार में यह आम कायदा है कि कम्पनी क्या है, है भी या नहीं, इसे कोई नहीं देखता। जिस कम्पनी के शेअर का बाजार में भाव

बढ़ गया, लोग समझते हैं वह खूब नफा कमा रही है, उसी के शेअर आँख बन्दकर खरीद लेते हैं। बाजार में मि० सिन्हा ऐसी रेल-पेल मचा देंगे कि हमारी कम्पनी का शेअर वहाँ गया नहीं और ऊँचे से ऊँचे भाव में बिका नहीं; बस लोग हाथों-हाथ खरीदने लगेंगे और हम अपने-अपने शेअर बेंच डालेंगे।'

मिस्टर दास ने आँखें फाड़कर मिस्टर जेंटलमैन को घूरकर देखा और कहा—और कम्पनी का काम कब स्टार्ट होगा? मशीनरी कहाँ से आवेगी, बिल्डिङ्ग भी तो बनेगी?

मि० जेंटलमैन ने कुटिल हास्य से कहा—उसकी कोई ज़रूरत नहीं। ज्यों ही हमारे शेअरों का रुपया हाथ लगे, कम्पनी दिवालिया हो जायगी।

मि० सिन्हा उछल पड़े। उन्होंने कहा—वन्डरफुल। मैं सब कुछ समझ गया। मिस्टर दास, मैं तुम्हें सब समझा दूँगा? लाओ, हाथ मिलाओ दोस्त।

तीनों ने हाथ मिलाया, परस्पर भेद-भरी दृष्टि से देखा और अन्तरङ्ग सभा विसर्जित की।

नीलगिरी पर्वत की भव्य श्रेणी पर चारों दोस्त एकत्रित थे। अङ्गरेजी होटल के एक ठाठदार कमरे में चारों दोस्त टेबिल पर बैठे थे। सेठ जी ने कहा—मि० जेंटलमैन, आपकी सूझ-बूझ का मैं कायल हो गया, आपका दिमाग सचमुच हीरा है।

मि० जेंटलमैन ने कहा—सेठ जी, आपने विश्वास किया और फल पाया। याद रखिए, मैं एक जेंटलमैन हूँ, जो कहता हूँ कर दिखाता हूँ।

'बेशक आप एक सच्चे जेंटमैलन हैं।'—सेठ जी ने विश्वस्त स्वर में कहा।

मि० जेंटलमैन ने सिगरेट का केश फेंककर कहा—कहिए

मिस्टर दास, इस सौदे में कितना नफा रहा ?

'दो लाख सेठजी को मिले और १ लाख २२ हजार हम तीनों में से प्रत्येक को मिले।'

'अब मेरा प्रस्ताव है, सेठजी कि ये तो छोटे-छोटे व्यापार हुए। आप चाहें तो मैं करोड़ों रुपया आपके चरणों में डाल सकता हूं।'

'मैं हर तरह आपके आधीन हूं। आप कहें तो कुएं में कूद पड़ूँ।'

'वाह, क्या मैं आपको कुएँ में उतारूँगा ?—जेंटलमैन जोर से हंस पड़े। इसके बाद उन्होंने कहा—'सुनिए, इस समय देश-भक्ति और देश-सेवा की आवाज देश में गूँज रही है।' तीनों मित्र ध्यान से सुनने लगे।

मि० जेंटलमैन ने कहा—देश भर में महादरिद्रता का राज्य है, परन्तु इसका कारण यह नहीं कि देश में धन नहीं। देश में बेशुमार धन है। परन्तु उसका विषम वितरण हो रहा है। कुछ लोग बहुत ज्यादा अमीर हैं, बाकी सब बहुत गरीब हैं।

तीनों मित्र सन्नाटा खींचे बैठे थे। जेंटलमैन बोले—इस समय यदि हम कोई ऐसा काम करें कि देश के दीन-दुखियों का भी भला हो—गरीबों को सहारा मिले—सर्वसाधारण के धन का सदुपयोग हो, तो कितना अच्छा है।

सेठ जी जोश में आकर बोल उठे—बहुत अच्छा, आप यदि कोई अनाथालय या ऐसी ही संस्था खोलना चाहें तो मैं आपको जितना आप चाहें धन दे सकता हूं। विश्वास कीजिए।

मि० जेंटलमैन ने होठ सिकोड़कर कहा—सेठ जी, मैं उन बेवकूफों से कुछ दूसरे ढङ्ग का आदमी हूँ, जो अनाथालय और धर्मशालाएँ बनवाते हैं। मेरा तो प्रस्ताव ही कुछ और है।

'वह क्या है ?'

'हम एक बैङ्क, राष्ट्रीय बैङ्क स्थापित करेंगे।'

तीनों मित्र अत्यन्त गम्भीर हो गए। वे आँखें फाड़-फाड़कर इस अक्ल के पुतले को देख रहे थे।

मि० जेंटलमैन ने खूब गम्भीर होकर कहा—हमारे प्रस्तावित बैङ्क का मूलधन दो करोड़ रुपया होगा। इसमें ५० लाख रुपया सेठजी का तथा १०-१० लाख रुपया हम तीनों आदमियों का लगेगा। सेठ जी बैङ्क के मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर होंगे। बाकी हिस्से हम आनन-फानन बेच डालेंगे। इस बैंक में हम ज्यादा से ज्यादा सूद पर लोगों की रकमें जमा करेंगे और रुपये को राष्ट्रीय उद्योग-धन्धों में लगायेंगे। ब्याज कम से कम लेंगे। यह देश के रुपये का देश के हित के लिए सदुपयोग करने का सबसे भारी काम होगा।

सेठ जी ने सहमत होते हुए कहा—मैं सहमत हूँ, परन्तु मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर की जिम्मेदारी नहीं ले सकता। यह काम आप स्वयं करें तो काम की सफलता की पूरी-पूरी आशा है।

मि० दास ने भी इसका समर्थन किया और मित्र सिन्हा भी सहमत हो गए। मिस्टर जेंटलमैन सर्व-सम्मति से बैङ्क के मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर नियत हो गए। वेतन ३०००) मासिक और रहने का स्थान, यथेष्ट भत्ता, १0 साल का कान्ट्रेक्ट। मिस्टर दास सेक्रेटरी, वेतन १००0) रुपया और सुविधाएँ। सब बन्दोस्त ठीककर, नियमोपनियम बना, नीलगिरी की ठण्डी हवा खा चारों मित्र अपने नये व्यवसाय को चलाने में आ धमके।

(९)

बैंक का नाम रखा गया 'भारत बैङ्क लिमिटेड।' मिस्टर जेंटलमैन के परिश्रम, दौड़-धूप, अध्यवसाय से बैङ्क की थोड़े ही दिन में धाक जम गई। कई बड़े-बड़े बैङ्क तथा सरकारी संस्थाओं से उसके सम्बन्ध जुड़ गए। सेठ जी सुन-सुनकर, देख-देखकर प्रसन्न थे। वे बोर्ड आफ डाइ-

रेक्टर्स के प्रेसीडेण्ट थे; और इसके लिए नकद ५००0) रुपया मासिक वृत्ति मिलती थी। पर वे सोलह आने मिस्टर जेंटलमैन के इशारे पर नाचनेवाले थे। बाकी दोनों मित्र भी उन्हीं के चेले थे। मिस्टर सिन्हा बैंक एजेंट बना दिए गए। उन्हें कमीशन में जितना रुपया मिलता था, उतना कभी सात पीढ़ी में भी न मिला था।

सेठ जी ने पूरा रुपया दे दिया था, उसी से बैंक खड़ा हुआ था। तीनों मित्रों के पास जो कुछ था दे दिया था, पर वह २-२ लाख से भी कम था। बाकी रुपया वे अपनी समस्त आमदनी से पूरा करते रहेंगे, इसका एग्रीमेन्ट था।

बैंक शुरू से ही नफा बाँटने लगा था, यह देखकर दोनों मित्रों को यह तलाबेली पड़ी थी कि अधिक से अधिक नफा प्राप्त करने को जल्द से जल्द अपना रुपया जमा कर दें। सेठ जी को भी यही पट्टी पढ़ाई गई थी कि नफा जो मिले उसके अधिकाधिक शेअर खरीदते जाइए, जिससे बैंक ही आपका हो जाय। और सेठ जी के दिमाग में यह बात जंच गई थी।

(१०)

तीन साल बीत गए। बैंक की अब कई शाखाएँ खुल गई थीं। और उसकी साख बहुत बढ़ गई थी। इस बीच में मिस्टर जेंटलमैन ने अपने बहुत से हिस्से बेच डाले थे। इसके सिवा उन्होंने बैंक से बहुत सा रुपया कर्ज ले रखा था। चूँकि वे बैंक के कर्त्ता-धर्ता थे। वे स्लिप लिखकर बैंक भेज देते, उतना ही रुपया वे पा जाते। इस रुपये से उन्होंने अपनी स्त्री के नाम बेशुमार जायदाद खरीद ली थी।

माहवारी वेतन के सिवा उनकी और भी आमदनी थी। एक रियासत को अपने बैंक से २२ लाख रुपया कर्जा दिलवाया। स्टेट की १५ साल की तमाम तहसील बैंक ने आड़ ली। पूरे लाभ का सौदा

था—इसमें आपको कुछ भी नहीं करना पड़ा। परन्तु डाइरेक्टरों को राजी करने के पारिश्रमिक स्वरूप आपको १ लाख रुपया इनाम या घूस मिल गया। इस प्रकार की आमदनी आपको होती ही रहती थी।

धीरे-धीरे बैङ्क की भीतरी हालत में परिवर्तन हो रहा था। अनेक मदों में होकर बैङ्क का बेशुमार रुपया मिस्टर जेंटलमैन के घर पहुंच चुका था। सेठ जी के जाली दस्तखतों से बैङ्क के डाइरेक्टरों की काल्पनिक बैठकों के निर्णयों पर बहुत से महत्वपूर्ण काम कर डाले गए थे। अब सेठ जी से मिस्टर जेंटलमैन को भारी खतरा था, चाहे जब उनका भण्डाफोड़ हो सकता था। मिस्टर जेंटलमैन ने अन्त में सेठ जी को दुनियाँ से उठा डालने का निश्चय कर डाला।

(११)

रात के दस बजे थे। मिस्टर दास और मिस्टर सिन्हा के साथ मिस्टर जेंटलमैन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय पर बातचीत कर रहे थे। बातचीत बहुत गम्भीरतापूर्वक हो रही थी। सब बातें सुनकर मिस्टर सिन्हा ने कहा—लेकिन दोस्त, यह निहायत खतरनाक काम है और अगर भेद खुल जायगा तो हम तीनों आदमियों को कालापानी हुआ रक्खा है और मैं तो अवश्य ही फाँसी पर लटकाया जाऊंगा।

मिस्टर जेंटलमैन ने कहा—ये आप बिलकुल बेवकूफी की बातें करते हैं। भेद खुलेगा ही कैसे? हम तीन ही तो आदमी इसको जानते हैं। तीनों ही इस खतरे के जिम्मेदार हैं। फिर भेद खोलेगा कौन? फिर इससे पहले जो कार्यवाहियाँ हुई हैं, उनके भेद क्या खुले है?

मि० सिन्हा ने घबड़ाकर कहा—लेकिन मि० जेंटलमैन! अगर आप इस बार मुझे बरी रखते तो भला होता।

जेंटलमैन ने क्रुद्ध होकर कहा—तब क्या आप समझते हैं कि लाखों रुपयों की सम्पत्तियों ही हड़प की जा सकती है? आपका यह

साहस कि आप मेरे हुक्म की अदूली करें। मैं जो कहता हूँ वह आपको करना पड़ेगा।

इसके बाद उन्होंने मिस्टर दास की तरफ मुखातिब होकर कहा—मिस्टर दास! जो दवाई मि० सिन्हा आपको देंगे उसको इस्तेमाल करने की जिम्मेदारी आपके ऊपर है। आपको मालूम है कि सेठ जी बीमार हैं। आप आज रात भर उनके पास रहिए और ठीक तौर पर दवा वगैरह देते रहिए। मि० सिन्हा आपको दो प्रकार की दवाइयाँ देंगे—एक पीने की और एक मालिश करने की। आप मालिश करने की दवाई चतुराई से इस ढङ्ग से रख दीजिए कि जब आप उन सेठ जी की स्त्री को दवाई देने की हियायत करके सो जायें तो वह मालिश करने की दवाई सेठ जी को पिला दे। ऐसा करने से आपके ऊपर कोई इलजाम भी नहीं आ सकता। लोग यह समझेंगे कि महज मामूली गलती हो गई और वह भी उनकी स्त्री के हाथ से।

मि० दास ने स्वीकृत-सूचक सिर हिलाया।

मि० जेंटलमैन ने खड़े होकर कहा—तो मिस्टर सिन्हा, आप सेठ जी को देख आइए और दवा मिस्टर दास के हाथ भेज दीजिए। मिस्टर दास! आप खबरदार रहिए कि आपका यह वार चूकने न पाए। आपकी इस सेवा के पुरस्कार में पचास-पचास हजार रुपयों के ये चिक हाजिर हैं। यह कहकर उन्होंने जेब से निकालकर दो चिक दोनों आदमियों के सामने फेंक दिए। इस भयानक रकम को जेब में डालकर दोनों आदमी इस अत्यन्त भयानक काम के करने को वहाँ से निकले।

मिस्टर जेंटलमैन सीधे बैङ्क में गए और अपने आफिस में बैठकर चपरासी को हिदायत कर दी कि कोई शख्स मुलाकात करने को अन्दर न आवे। उन्होंने तमाम कागजातों को अच्छी तरह से जाँच लिया। सेठ जी के जाली दस्तखतों से जो चिक कैश किए गए थे उन सब की

उन्होंने एक सूची बना ली। इसके बाद जाँचकर उन्होंने देखा कि बैंक के कुल ४५ लाख रुपये उन्होंने अपने नाम कर्ज खाते लिए हुए हैं। इसके बाद बैंक के मैनेजर को उन्होंने अपने सामने बुलाया और कहा—कहिए, अब आप क्या कहना चाहते हैं। क्या आपने तमाम बैलेन्ससीट तैयार कर लिया?

मैनेजर—जी हाँ। लेकिन नकद रुपया इस वक्त हाथ में बहुत कम है और लगभग सब रुपया बाहर फँसा हुआ है। लोगों में हलचल और बेचैनी पैदा हो गई है। कल तो मैंने किसी तरह पेमेण्ट कर दिया, पर यदि आज भी उतना ही पेमेण्ट रहा तो पेमेण्ट होना मुश्किल है।

जेंटलमैन ने चिन्तित होकर कहा—लेकिन क्या आप केवल आज का काम नहीं चला सकते? कल और परसों तो छुट्टी है। इन दो दिनों के अन्दर तो मैं रुपयों का काफी इन्तजाम कर दूँगा।

मैनेजर—क्या आप ५ लाख रुपये अपने कर्ज खाते में से नहीं दे सकते?

जेंटलमैन—(भौं सिकोड़कर) इससे आपको कोई सरोकार नहीं। मैं यह कहना चाहता हूँ कि आप खबरदार रहें और आप इस रकम की कभी चर्चा न करें।

मैनेजर—(जरा दृढ़ता से) परन्तु जनाब, रुपयों का और कोई बन्दोबस्त भी तो नहीं हो सकता। अगर आप इजाजत दें तो मैं बैंक को बन्द कर दूँ।

जेंटलमैन—नहीं, यह असम्भव है।

मैनेजर—तब पेमेण्ट भी असम्भव है। क्योंकि मुझे कामिल यकीन है कि आज कम से कम १० लाख रुपया देना पड़ेगा। मेरे पास इस वक्त कुल चालीस हजार रुपया है। मैं बहुत थोड़ा और इन्तजाम कर सकता हूँ।

मिस्टर जेंटलमन के माथे में बल पड़ गए। वह अपनी कुर्सी पर से उठ खड़े हुए, उन्होंने क्रोध से हथेली पर मुट्ठी मारकर कहा—क्या आप आज भर का काम नहीं चला सकते ?

'जी नहीं'—मैनेजर ने कागजात मेज पर डाल दिए।

'तब ठीक—आप बैङ्क को बन्द कर दीजिए।'

जेंटलमन तीर की तरह अपने कमरे से निकलकर मोटर में आकर बैठ गए।

(१२)

शहर में तूफान की तरह यह खबर पहुँच गई। बैङ्क का फेल होना और सेठ जी का एकाएक मर जाना, ये दोनों खबरें लोग आश्चर्य और सन्देह से सुन रहे थे। सेठजी का मर जाना जिस तरह आश्चर्य-जनक था, उसी प्रकार बैङ्क का फेल होना भी। जिस तरह सेठ जी हट्टे-कट्टे थे, उसी तरह बैङ्क की भी हालत अच्छी थी। एकाएक उनका क्या हुआ, इसकी लोग कल्पना भी नहीं कर सके। जिनके रुपये बैङ्क में जमा थे, उनके ठट्ठ के ठट्ठ बैङ्क के आगे खड़े हुए थे। पुलिस प्रबन्ध कर रही थी, लोग दर्वाजों पर पत्थर चला रहे थे, और चिल्ला रहे थे। भीड़ को काबू में करना कठिन हो गया। मिस्टर जेंटलमैन अपने सालीसीटर के यहाँ बैठे हुए अपने इन्सालवैंसी के कागजात तैयार करा रहे थे। दर्वाजे बन्द थे, और दोनों व्यक्ति मेज पर फैले हुए कागजों को टटोल रहे थे।

सालीसीटर ने कहा—मि० जेंटलमैन! क्या यह अफवाह सच है कि बैङ्क की पोजीशन खराब होते देख सेठ जी ने जहर खा लिया!

'जी नहीं। मैंने तो यह सुना है कि उनकी स्त्री ने गलती से मालिश करनेवाली दवा पिला दी। लेकिन यह सुना ही तो है, इसमें सचाई कहाँ तक है, यह तो ईश्वर जाने, परन्तु सेठजी के

मरने से मैं तो बड़ी आपत्ति में पड़ गया। और यह कलंक का टीका मेरे ही सर पर लगा है। अफसोस है कि आज यह बदनामी मेरे गले बँधी।

सालीसीटर ने अपने सम्पूर्ण कागजातों पर नजर दौड़ाते हुए कहा—मि० जेंटलमैन! आपको जेल जाने की पूरी तैयारी कर लेनी चाहिए, कागजात आपके खिलाफ हैं। और बैङ्क का लगभग ५०,००,०००) पचास लाख रुपया आपके नाम जमा पड़ा हुआ है, अपने घर-खर्च में गैर-कानूनी ढङ्ग से बैङ्क का रुपया आपने काम में लिया है।

मि० जेंटलमैन ने गम्भीर चेहरा बनाकर कहा—'मैंने तो जो कुछ किया है, सब बैङ्क के फायदे के लिए ही किया है। फिलहाल तो आप इन्सालवैंसी लिख दीजिए और जहाँ तक भी बने आप इस बैङ्क के रिसीवर बन जाइए। लेकिन आप इस बात को याद रखिए कि मेरे और आपके ताल्लुकात नये नहीं हैं। अगर आप इस मुसीबत से मेरी रक्षा करने का ख्याल रक्खेंगे तो मैं बाहर नहीं हूं, बङ्क फेल हुआ है, मैं नहीं। उन्होंने १०,००० रुपये के नोट मेज पर रख दिए, यह आप का प्रारम्भिक नजराना है। आगे मैं हर तरह आपको खुश करूँगा!' दोनों ने भेद-भरी निगाह से एक दूसरे को देखा, हाथ मिलाए और फिर आँखें मिलाईं। दोनों ने एक दूसरे को समझ लिया, और अपना कर्तव्य निर्णय कर लिया।

(१३)

दास और मि० जेंटलमैन फिर एकत्रित थे। इस समय दोनों के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ी हुई थीं। मि० जेंटलमैन का मुंह गुस्से से लाल हो रहा था और मि० दास का भय से पीला। मि० जेंटलमैन ने मेज पर हाथ मारकर कहा—देखो मि० दास! अगर तुमने इस समय बेवकूफी की तो सीधे जहन्नुम रसीद कर दिए जाओगे। मैं एक जेंटलमैन

हूँ, अगर तुम मेरी बात को मान गए और जैसा मैं कहूँ वैसा करते गए तो इसमें कोई शक नहीं, कि अभी तुम लाखों रुपया कमाओगे।

मि० दास ने कहा—आप चाहते क्या हैं?

जेंटलमैन ने जेब से एक फेहरिस्त निकलकर कहा कि यह फिक्स्ड डिपाजिट की सूची है। कुल ८५,00 000) पचासी लाख रुपया फिक्स्ड डिपॉजिट बैङ्क में जमा था। आप जानते हैं। कि बैङ्क फेल हो गया और इस वक्त पावनादारों को दो आना फी रुपया भी नहीं मिल सकता। सेठ जी, जो सबसे बड़ी रकम के देनदार थे, वे बेचारे मर गए। अब तुम यह उद्योग करो कि जहाँ तक मुमकिन हो सके, तमाम फिक्स्ड डिपाजिटर अपनी-अपनी रसीदें ज्यादा से ज्यादा चार आने के हिसाब से हमको बेच दें, और जब उन्हें मालूम हो जायगा कि बैङ्क में ⁄) आने फी रुपया भी मिलना मुश्किल है, तो वे ।) आने रुपये में अपनी रसीद बेच देंगे चूंकि जो कुछ मिल जाय सो बहुत है।

'लेकिन वह रसीद खरीदेंगे कौन?'—मि० दास ने उतावले से होकर कहा।

'मैं खरीदूंगा, मैं। आप एकदम दलाल को डिपाजिटर्स के पास भेजिए। लेकिन याद रखिए. इसमें मेरा नाम न खुलने पाए, और दूसरी बात यह भी याद रखिए कि हमको सिर्फ बारह दिन का मौका है, अगर हम इन १२ दिनों में तमाम रसीदें न खरीद लेंगे तो याद रखिए कि हम लोग जहन्नुम-रसीद हो जायेंगे।'

मि० दास स्वीकृति-सूचक सिर हिलाते हुए चले गए। इनके जाने के बाद ही मि० सिन्हा ने घबड़ाये हुए कमरे में प्रवेश किया और कहा—आपको मालूम है मि० जेंटलमैन, हम लोगों के नाम वारण्ट जारी हो गए हैं।

जेंटलमैन ने सहज गम्भीर स्वर में कहा—मालूम है। लेकिन भाई मैं तो अपने बचनेकी कोई कोशिश नहीं करना चाहता, जो होगासो होगा

लेकिन तुमपर मुझे तरस आता है। मैं चाहता हूँ कि तुम फौरन अमेरिका भाग जाओ, क्योंकि मुझे मालूम हो रहा है कि बैंक के फेल होने के साथ ही साथ सेठ जी की मृत्यु पर भी शक हो रहा है।

मि० सिन्हा ने कहा—मि० जेंटलमैन, आप तो जानते हैं कि मेरी तो कुल पूँजी बैंक में जमा थी। यह देखिए, यह दो लाख की रसीद है।

मि० जेंटलमैन ने कहा—भाई, उसके लिए तो सब्र करना पड़ेगा। मेरे से तो जो बन पड़ा किया। लेकिन बात यह है कि विदेश में तुम कुछ कमाकर अपना सुखपूर्वक निर्वाह कर सको, इसलिए तुम्हारे पास एक छोटी-सी रकम जरूर होनी चाहिए। तुम्हारे पास ५० हजार रुपया तो है ही, लाओ यह रसीद मुझे दो, मैं तुम्हें बीस हजार रुपये और दिए देता हूँ। तुम मेरे दोस्त हो। तुम अपना बचाव करो। मेरे भगवान मालिक हैं।

यह कहकर उन्होंने बीस हजार के नोट निकालकर मि० सिन्हा के हवाले किए और रसीद अपनी जेब में रख ली।

मि० सिन्हा की आँखों में आँसू आ गए। उन्होंने कहा—मि० जेंटलमैन, आप धन्य हो। अगर आपकी इस वक्त यह सहायता न मिलती तो मैं मर चुका था।

जेंटलमैन ने हाथ बढ़ाकर कहा—लेकिन भाई, सही-सलामत जहाज में बैठ जाओ और अमेरिका पहुँच जाओ, तब जानूं कि मेरी मेहनत सफल हुई। हमेशा के लिए याद रखना कि मैं एक जेंटलमैन हूँ।

मि० सिन्हा आँखों में आँसू भरकर विदा हुए और चले गए।

जेंटलमैन कुर्सी से उठे और दोनों हाथ मलते हुए कमरे में जल्दी-जल्दी टहलने लगे। बड़बड़ाते हुए उन्होंने कहा कि सब काम अपने आप ठीक होते चले जा रहे हैं।

(१४)

ठीक दस दिन बाद मिस्टर दास और जेंटलमैन फिर कमरे के

अन्दर बैठे हुए थे। उनके सामने फिक्स्ड डिपाजिट की बहुत-सी रसीदें फैली हुई थीं। इन सबकी एक सूची बनाकर उन्होंने जोड़ लगाकर देखा कि कुल ६५ लाख रुपयों की रसीदें हैं, जो उन्हें सिर्फ सात लाख रुपयों में मिल गईं। उन रसीदों को समेटकर जेब में रखते हुए जेंटलमैन ने एक ठण्ढी साँस ली और कहा—मिस्टर दास, अब मैं जो कुछ कर सकता था, कर गुजरा। मेरे पास जो कुछ था, वह मैंने डिपाजिटरों को दे दिया। अब जो ये रसीदें हैं, ये सब मेरे साथ चिता में जलेंगी। आप जानते हैं कि इनकी एक कौड़ी भी अब वसूल नहीं होने की। अब तक मैंने आपके साथ सब तरह से दोस्ती निभाई, अब कहिए कि मैं आप के साथ क्या कर सकता हूँ ? मै चाहता हूँ कि जो कुछ स्याह-सफेद हो मेरा हो, आपको आँच भी न आए। लेकिन चूँकि आप बैङ्क के सेक्रेटरी रह चुके हैं और कुल कागजातों के आप जिम्मेदार हैं और प्रेसिडेण्ट की आज्ञा से तमाम बातें आपने की हैं, और प्रेसिडेण्ड साहब का अन्त-काल हो गया है, अतः अब आपही एक आदमी बचे हैं कि जिनपर तमाम जवाबदेहियाँ आ सकती हैं।

मिस्टर दास नें घबड़ाकर कहा—मिस्टर जेंटलमैन, आप मुझे बचाइए। हालाँ कि मेरे तमाम रुपये बैङ्क के साथ डूब गए; फिर भी जो कुछ मेरे पास है उसे खर्च करने को तैयार हूँ, पर बेदाग बच जाऊँ। मैं अपनी औरत के जेवर भी बेचने को तैयार हूँ।

जेंटलमैन ने करुणापूर्ण शब्दों में कहा—'नहीं मेरे दोस्त, तुम मेरे कारण इस मुसीबत में फँसे हो। मैं तो बरबाद हुआ, पर तुम्हें कभी बरबाद होने नहीं दूंगा। तुम्हारे दो लाख के शेअर बर्बाद हुए न! लाओ वह रसीद मुझे दो और ये दस हजार रुपये मेरे पास बचे हैं, ले लो। मैं चाहता हूँ कि तुम इससे अपना रोजगार करो। और जो तजुर्बा तुमने मेरी सोहबत से उठाया है उससे तुम बहुत कमाओगे।' मिस्टर दास को कभी यह उम्मेद नहीं थी कि उन्हें एकदम दस हजार रुपये

की अच्छी रकम उन रही रसीदों की एवज में मिल जायगी। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि मिस्टर जेंटलमैन मनुष्य नहीं देवता हैं। उसने खुशी से नोटों की तरफ हाथ बढ़ाया। लेकिन जेंटलमैन ने एक कागज उनकी तरफ बढ़ाकर कहा—'मिस्टर दास. इस कागज पर तुम्हें दस्तखत करने होंगे। और यह रुपया तुम्हारा है।' उन्होंने रुपये मिस्टर दास के सामने फेंक दिए और मिस्टर दास ने कागज को बिना पढ़े ही दस्तखत कर दिए और मिस्टर जेंटलमैन ने रसीद को लेकर अपनी जेब के हवाले कर लिया।

(१५)

अदालत का कमरा ठसाठस भरा हुआ था। 'भारत बैंक लिमिटेड' का सनसनीदार मुकद्दमा हाईकोर्ट की फुल बेंच में पेश हुआ।

मिस्टर दास और मिस्टर जेंटलमैन अपराधी के कटहरे में खड़े थे। तीसरा अभियुक्त मिस्टर सिन्हा फरार था। चौथे सेठजी मर चुके थे। इन चारों के खिलाफ बैंक का रुपया अपने निजी काम में लाने का अभियोग था। और यह बतलाया गया था कि इसी कारण बैंक फेल हो गया था।

मिस्टर जेंटलमैन के सालीसीटर ने अदालत को जवाब दिया कि मेरे मुवक्किल के खिलाफ यह इलजाम बिल्कुल गलत है। इसने बैंक का रुपया निजी काम में खर्च नहीं किया। कागजातों में अलबत्ता रकम मेरे मुवक्किल के नाम दर्ज है। लेकिन माई लार्ड! वह कर्जा नहीं है। मेरे मुवक्किल के ६७ लाख रुपये बैंक के फिक्स्ड डिपाजिट में जमा हैं, जिनकी ये रसीदें मैं अदालत में पेश करता हूँ। और उसने वह तमाम रसीदों का ढेर अदालत में पेश किया।

मिस्टर जेंटलमैन ने किस इरादे से इन रसीदों का संग्रह किया था—इसका भेद मिस्टर दास को अब लगा और वह अकचका कर

मिस्टर जेंटलमैन की तरफ देखने लगे। जेंटलमैन मुस्करा रहे थे।

इसके बाद जेंटलमैन के बैरिस्टर ने एक कागज अदालत में पेश किया, जिसपर मिस्टर दास की सही थी। इस कागज के द्वारा यह साबित होता था कि दास ने ही अपनी जिम्मेदारी पर प्रेसिडेण्ट के कहने के मुताबिक बैंक की काफी रकम सेठ जी के कारोबार में लगाई थी।

दास ने इस बात से बिल्कुल इन्कार किया, लेकिन उनके दस्तखतों का कागज अकाट्य प्रमाण था। हाईकोर्ट ने फैसला दे दिया।

जेंटलमन बरी हो गए। बैंक फेल हुआ। मिस्टर दास ७ वर्ष के लिए कालेपानी भेज दिए गए।

(१६)

मिस्टर जेंटलमैन बम्बई छोड़कर दिल्ली चले आए हैं। यहाँ उन्होंने बहुत-सी जायदाद खरीदी है। बम्बई में भी इनकी बड़ी भारी जायदाद है। लोगों का खयाल है कि उनकी सम्पत्ति एक करोड़ से ऊपर है। वह बड़े हंसमुख और लोकप्रिय हैं। खूब पार्टियाँ देते हैं। अफसर लोग उनसे प्रसन्न हैं। लोग जब उन्हें बिजनेस करने को कहते हैं तो वह हँसकर कहते हैं कि—बाबा, अब मैं कोई बिजनेस नहीं करूंगा, बिजनेस ने मुझे बड़ी-बड़ी तकलीफें दी हैं। मैं एक जेंटलमैन हूँ। आजकल बिजनेस का ढङ्ग बहुत बिगड़ गया है, इसलिए किसी भी जेंटलमैन को बिजनेस नहीं करना चाहिए। लोगों का खयाल है कि वह निहायत खरे और बेलाग आदमी हैं।

दिल की बीमारी

लेखक—श्रीयुत गोविन्दवल्लभ पंत

हट जाइए, सामने से हट जाइए।

बायें हाथ में केन घुमाते हुए, दाहिना हाथ पतलून की जेब में खोंसे मिस्टर लम्बचन्दर चले आ रहे हैं, सामने से हट जाइए।

होठों की सीटी पर ताजा पालिश किया हुआ जूता ताल देता हुआ चला आ रहा है और चला आ रहा है उनके पीछे-पीछे नालों और कोनों को सूँघता हुआ उनका प्यारा कुत्ता लकी।

अपनी चौड़ाई से छः गुना लम्बे होने के कारण ही आपका नाम लम्बचन्दर पड़ा है। गरुड़ की तरह आपकी नाक है, जिसके ऊपर पिंस नेज शोभित है। गलमोछें कान की जड़ तक बढ़ाई गई हैं। मोछों पर लम्बाई और चौड़ाई दोनों ओर से रोज अस्तुरा चलता है, वे बेचारी नाक के नीचे छिपकर किसी प्रकार अपना अस्तित्व सँभाले हैं। दोनों चपटे गाल नुकीली ठोढ़ी में जाकर मिल गये हैं और उसमें तीस अंश से अधिक का कोण नहीं है।

आपकी वेमश-भूषा कहती है, आप श्रीसम्पन्न हैं। आपकी इकहरी दुबली-पतली काया को आपकी लम्बाई ने और भी दुबला कर दिया है।

मिस्टर लम्बचन्दर पश्चिमी सभ्यता के जबर्दस्त उपासक हैं। बचपन से ही अँगरेजों के स्कूल में पढ़े और उनके हास्टल में रहे हैं। सीनीयर कैंब्रिज की परीक्षा में तीन छापे मारने पर भी जब आप फेल हो गये तब चाचाजी ने कहा—'जाने भी दो बेटा! पढ़कर क्या होता है? मैंने इतनी बड़ी जायदाद जोड़ डाली। मैंने कौन-सा पढ़ा है?

माता-पिता बचपन में ही स्वर्गवासी हो गये थे। आपके एकमात्र अभिभावक चाचा जी ही हैं। उनके कोई सन्तान नहीं। गंगा के किनारे जमीदारी है, शहर में दो-तीन बँगले-कोठियाँ हैं।'

मिस्टर लम्बचन्दर ने पढ़ने के लिये विलायत जाने की हवा बाँधकर स्कूल छोड़ दिया। चाचाजी ने पहले उन्हें विलायत भेजने का निश्चय जरूर किया था, परन्तु बाद को लोगों ने उनसे क्या कह-सुन दिया कि वे बराबर टाल-टूल बताने लगे।

लम्बचन्दर अपनी धुन में उसी प्रकार नाक की सीध में चले जा रहे थे। कुछ दूर चलकर उन्हें कुत्ते की याद आई। रुककर पीछे की ओर देखा। उसका पता न था। जोर से आवाज दी—"लक्की! लक्की" सीटी दी—"स्वी SS, स्वी SSS, स्वी SSSSS! कुछ फल न निकला, पीछे मुड़कर गली के मोड़ से झाँका और 'डैम' कहकर पैर पटका. फिर अपना रास्ता लिया।

डाक्टर तुम्बुरु की शहर में अच्छी प्रसिद्धि है। आपने विदेशों में चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा पाई हैं। अपना अस्पताल खोल रक्खा है। रुपया आप खूब कमाते हैं, पर जमा कुछ भी नहीं है। खर्च बेहिसाब है, कुछ बचा नहीं सकते। अस्पताल के पास ही डाक्टर साहब के रहने का बँगला है।

नीला आपकी कन्या का नाम है। पुत्र आपके कोई नहीं। मिस नीला साहित्य-कलाओं में प्रवीण, बड़ी परिष्कृत रुचि की है। बी० ए० में पढ़ती है।

डाक्टर तुम्बुरु के पिता और लम्बचन्दर के चाचा जी का ' हेल-मेल है। लेकिन चाचा जी कभी डाक्टर तुम्बुरु के यहाँ नहीं जाते। चाचा जी पुराने ख्याल के हैं, शालग्राम का चरणामृत पीः और तुम्बुरु पर नई रोशनी है, उन्होंने शालग्राम को उठाकर आफिस में रखकर पेपर-वेट बना डाला है।

लम्बचन्दर की अगर बन आवे तो वह दिन भर डाक्टर सा बँगले की परिक्रमा करते रहें। कारण लम्बचन्दर और मिस बचपन में एक ही स्कूल में पढ़े थे। स्कूल भर में हिन्दुस्तानी छात्र वही दो थे। दोनों एक दूसरे की ओर आकृष्ट हुए। मिस नीला ः की हम नहीं जानते, पर लम्बचन्दर आज उसके गुणों का उपाक उसके रूप का पागल हैं।

सात दिन में एक बार कोई-न-कोई बहाना निकालकर आप ड साहब के यहाँ पहुँच ही जाते हैं। कभी मिस नीला के लिये नई पु कभी कोई नये फूल का पौधा और कभी कोई नया समाचार लेकर वहाँ आसन जमा ही तो देते हैं।

नीला लक्की को खूब पसन्द करती है। लम्बचन्दर ने बड़ी ः से लक्की को कई तरह के काम सिखाये हैं। पिछले दिनों उसने लालटेन मुँह में लेकर चलने की शिक्षा दी थी। इस अभ्यास में लालटेनों की चिमनियाँ टूटी थीं और चाचा जी के नये रंग में लग गई थी।

आज नीला के सामने उसी अभ्यास की परीक्षा देने के लिये ' आशा और बड़े उत्साह के साथ श्रीयुत लम्ब जी चले जा रहे ः लक्की आधे रास्ते से ही गायब हो गया। मन मसोसकर रह गये। देर हो रही थी। लक्की भी अभी अभ्यास में पक्का नहीं हुआ था, में लालटेन फेंककर चल देता था।

कुत्ते का ध्यान छोड़कर लम्बजी डाक्टर साहब के बंगले की ओर चले। सीटी न जाने कब की बन्द हो चुकी थी। पतलून की जेब से हाथ निकालकर घड़ी देखी। शाम को चार बज चुके थे।

गले में माला की तरह स्टीथस्कोप धारण किये डाक्टर साहब चाय पीने के लिये अस्पताल से अपने बंगले को जा रहे थे। फाटक पर ही लम्बजी से मुटभेड़ हुई।

लम्बजी ने विनम्र भाव से सिर झुका एक हाथ से वन्दना की।

डाक्टर साहब ने जरा-सा सिर हिलाकर कहा—'हलो; लम्ब जी, आज मुख उतरा हुआ है।'

लम्बजी चेहरा और भी उदासकर बोले—'जी हाँ, डाक्टर साहब, बीमार हो गया।'

डाक्टर साहब ने लम्बचन्दर की पीठ पर हाथ रखकर कहा—'हैं, तुम? तुम्हारी यह उगती हुई अवस्था और तुम बीमार!'

'क्या करूँ? लाचारी है, डाक्टर साहब।'

दोनों बैठक में पहुँच गये थे। नीला दूसरे कमरे में हारमोनियम बजा रही थी। डाक्टर साहब ने एक कुर्सी पर बैठते हुए दूसरी कुर्सी की ओर इशारा कर लम्बजी से कहा—"बैठो।"

लम्बचन्दर जी कुर्सी पर बैठ गये। डाक्टर साहब ने मेज पर रक्खी हुई घंटी का बटन दबाते हुए लम्ब जी से पूछा—"बीमार हो गये। शिकायत क्या है?"

"दिल धड़कता है डाक्टर साहब!"

डाक्टर साहब ने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा—"अरे भाई! दिल तो धड़कने के लिये ही बनाया गया है।"

"मेरा मतलब है, वह जोर-जोर से जल्दी-जल्दी धड़कता है।"

नौकर ने चाय लाकर मेज पर रख दी।

कुछ चिन्ताकर डाक्टर साहब ने लम्बजी के हृदय की परीक्षा की और उसके बाद बोले—"ऊँहूँ, कुछ भी भय की बात नहीं है। आपके दिल की बिलकुल मामूली हालत है। इस तरह बीमारी के खयाल मत जमा करो। आपको जानना चाहिए विचार मस्तिष्क में बड़ी गहरी रेखाएँ खींच देते हैं। लो चाय पियो।"

लम्बजी ने सकुचाते हुए कहा—"क्या चाय मेरे लिये हितकर होगी ?"

"मैं कहता हूँ, हितकर-अहितकर की बात ही छोड़ दो। तुम्हें कोई बीमारी नहीं है।" डाक्टर साहब ने चाय पीते हुए कहा।

लम्बजी नित्य नीला से मिलने के लिये एक नई खिड़की खोलना चाहते थे। चाय के प्याले का स्पर्श करते हुए पूछा—"कोई बीमारी नहीं है ?"

नीला बाजा बन्दकर वहीं आ पहुँची थी। लम्बजी ने दोनों हाथ जोड़कर उसे प्रणाम किया। नीला प्रत्युत्तर देकर एक कुर्सी पर बैठ गई और चाय के तीसरे प्याले की ओर हाथ बढ़ाया।

"नहीं, कोई बीमारी नहीं है।" डाक्टर साहब ने कहा।

"सिर में कभी-कभी चक्कर-सा मालूम देता है, दिल में बेचैनी भी।"

"जीभ तो दिखाओ।"

लम्बजी ने जीभ बाहर निकाली। डाक्टर साहब ने जीभ की परीक्षा करके कहा—"पेट में जरा कब्ज हो गया जान पड़ता है। फार्मेसी से एक-दो खुराक कैलोमल की ले जाकर पी लेना। ठीक हो जाओगे।"

चाय पीते हुए लम्बजी बोले—"सीरिएस (जोखिम का) मामला तो नहीं है ?"

"सीरिएस होते देर क्या लगती है ? बीमारी का खयाल बिलकुल भुला दो।"

"किस प्रकार, डाक्टर साहब ? किस प्रकार ?"

"कभी टहलने निकल जाया करो। कभी किसी अच्छी पुस्तक से मन बहला लिया करो। कभी दो-चार मित्र-साथियों के हँसी-मजाक में शामिल हो जाया करो। मन को शान्ति देने के लिये संगीत भी अद्भुत वस्तु है। और हाँ, कभी-कभी नाटक-सिनेमा भी देखने जा सकते हो।"

लम्बजी प्रसन्न होकर बोल उठे—"प्लाजा में ट्रांसहिमालयज नामक एक नया फिल्म आया है।"

मिस नीला बीच में ही बोल उठी—"कब ?"

"आज आखिरी खेल है।"

मिस नीला कहने लगी—"वह एक विलायती फिल्म है। मैंने अँगरेजी के एक पत्र में उसकी बड़ी सुन्दर समालोचना पढ़ी है। फिल्म की भौगोलिक महत्ता उसकी विशेषता है। फिल्म स्टूडियो में नमक का हिमालय बनाकर नहीं, प्रत्युत असली घटना-स्थलों में ही तैयार किया गया है।

लम्बजी—"तो चलो संध्या के खेल में उसे देख आवें। डाक्टर साहब आप भी।"

डाक्टर साहब—"अरे भाई, मेरे जीवन के ये आनन्द नहीं बनाये गये हैं। अभी एक मेजर आपरेशन करना है, बड़ा ही कंप्लेक्स केस है। दो-चार मिनट का अवकाश निकालकर आया था। चला।"

डाक्टर साहब उठकर जाने लगे। जाते-जाते उन्होंने पूछा—"नीला, तुम्हारी माता ?"

"लेडीज क्लब की कार्य-कारिणी-सभा में गई हैं।"

लम्बजी ने पूछा—"मिस नीला मेरे साथ सिनेमा देखने जा सकती हैं?"

डाक्टर साहब हँसते हुए बोले—"नीला की बात वह जाने। अगर वह सिनेमा देखने जाना चाहती है तो मुझे क्योंकर इनकार हो सकता है।"

डाक्टर साहब अस्पताल को चल दिये। आप अपने पेशे में जितने दक्ष हैं, उतने ही अपने उदार विचारों के लिये भी प्रसिद्ध हैं। आपने नीला को पर्याप्त स्वतंत्रता दे रक्खी है। उसके पैर बाँधकर अँधेरे घर में कैद कर देना आप मनुष्यता का बहुत बड़ा कलंक समझते हैं। आपके विचारों की परिधि बहुत बड़ी है। वह छोटे-छोटे संप्रदाय, जाति और वर्णों में विभक्त नहीं है।

उस सुमधुर एकांत में लम्बजी का दिल तेजी से धड़कने लगा। उन्होंने कहा—"मिस नीला, मैंने सुना है, ट्रांस-हिमालयाज के बनाने में फिल्म-कम्पनी का एक करोड़ रुपया खर्च हुआ है। उसके दस एक्टर और नौकरों ने जान से हाथ धोये हैं।"

नीला ने घंटी देते हुए कहा—"सम्भव हो सकता है। लेकिन ये विदेशी विज्ञापन-लेखक तिल का ताड़ बना देने में बड़े होशियार हैं।

नौकर आकर चाय के बर्तन उठा ले गया।

"एक मजेदार बात और है। हिमालय की जड़ में बिलकुल स्वभाविक सेटिङ्ग में सीन चल रहा था। चार फोटोग्राफर और ऑडिओग्राफर भिन्न-भिन्न कोणों और स्थितियों से उस दृश्य के रूप तथा वाणी को अंकित कर रहे थे। अचानक ऊपर से बर्फ का एक पहाड़ खिसक पड़ा। पाँच आदमियों को छोड़कर शेष ने वहीं पर हिम-समाधि प्राप्त की। मुझे उन टेकनीशियनों की बहादुरी का लोहा मानना पड़ता है जिन्होंने उस प्राण-संकट के समय भी अपने पैर जमाये रक्खे और बराबर अपनी-अपनी मशीनों पर काम करते रहे।"

"खूब ! तब तो फिल्म में बड़ी स्वाभाविकता पैदा हो गई होगी।"

"कहना ही क्या है। सुना है, जीवन और मृत्यु के संघर्ष का ऐसा सजीव और इतना सच्चा चित्रण किसी दूसरे फिल्म में नहीं है।"

नीला फिल्म देखने के लिये बहुत उत्कण्ठित हो उठी। घड़ी की ओर देखकर बोली—"साढ़े पाँच बजना चाहते हैं। तीन मिनट बाकी हैं ?'

लम्बजी बोले—"चलो।"

"अभी से वहाँ जाकर करेंगे क्या ? खेल तो साढ़े छः से शुरू होगा न ?"

लम्बजी इस चिन्ता में थे कि अगर कहीं नीला की माताजी आ पहुँचीं तो सम्भव है, वे नीला को सिनेमा जाने से रोक दें। लम्बजी जिस प्रेम-रहस्य को अपने मन में बन्दी रक्खे-रक्खे घबड़ा गये थे, आज उसे नीला के समीप मुक्तकर शांति की साँस लेना चाहते थे। यदि नीला की माताजी भी सिनेमा चलने को तैयार हुईं तो सारा खेल चौपट हो जायगा।

लम्बजी ने खाँसते हुए बड़ी गम्भीरता से कहा—"पन्द्रह मिनट थियेटर तक पहुँचने में लग जायँगे। पैदल ही चलेंगे। रह गया आधा घंटा, उसे पार्क की ओर घूमकर बिता देंगे।"

नीला राजी हो गई। बड़े ठाठ के साथ लम्बजी उसे लेकर चले। आस-पास कुछ लोग लम्बजी के परिचित मिले, लेकिन उन्होंने उनको ओर फूटी आँख से भी नहीं देखा।

मार्ग में नीला ने कहा—'आपने आज लड्डी को लाने का वादा किया था। नहीं लाये ?'

"लाया तो था, लेकिन कम्बख्त आधे रास्ते से ही न जाने कहाँ भाग गया।"

राजेन्द्र पास ही के मार्ग से गुजर रहा था। वह लम्बजी को बहुत छेड़ा करता है। लम्बजी की दृष्टि नीला पर थी। उन्होंने उसे जाते हुए नहीं देखा। नीला साथ न होती तो वह दुष्ट लम्बजी की यात्रा में बाधा देकर उससे कुछ-न-कुछ छेड़-छाड़ जरूर करता। फिर भी उसने जाते-जाते संशय-भरी खाँसी खाँस ही तो दी!

राजेन्द्र ने मुड़कर देखा, दोनों पार्क की ओर जा रहे थे। उसने मन में विचार किया, आज यह लम्बू इस नई तितली को लेकर कहाँ विहार करने जा रहा है।

राजेन्द्र को कोई निश्चित काम नहीं था। घर से मनोरंजन के लिये निकला था। छिपे-छिपे उन दोनों का पीछा करने को चला।

दोनों कुछ देर पार्क की सैर कर फिर प्लाजा की ओर चले। पहले दर्जे का टिकट खरीदकर दोनों ने हाल के अन्दर प्रवेश किया।

राजेन्द्र भी दूर से यह सब लक्ष्य करता हुआ चला आ रहा था। एक टिकट मोल लेकर वह भी पहले दर्जे के भीतर चला गया। आखिरी लाइन में सिरे पर की एक कुर्सी खाली थी। उसी पर जाकर वह बैठ गया। सबसे पहली पंक्ति में सिरे पर की पहली कुर्सी में लम्बजी विराजमान थे, उसके बाद मिस नीला। बीच में पाँच कुर्सियाँ खाली पड़ी थीं। उसके बाद उधर कुछ लोग बठे थे।

सिनेमा शुरू हुआ। दो रील का एक छोटा-सा प्रहसन समाप्त होने के बाद ट्रांस-हिमालयाज़ शुरू हुआ। अचानक बीच में कट गया। आपरेटर रोशनी कर उसे जोड़ने लगा।

लम्बजी कुर्सी पर अपना हैट रखकर उठ खड़े हुए और बोले—"नीला, अभी दो मिनट में आया।.जरा बाहर हो आता हूँ।'

लम्बजी के बाहर जाते ही पहली लाइन के दूसरे सिरे पर की एक कुर्सी से आवाज आई—"नीला!"

नीला ने उधर देखा। उसकी सहेली पद्मा थी।

पद्मा ने फिर कहा—"इधर आओ बहन! मैंने तो तुम्हें अब देखा।"

नीला उधर जाकर बैठ गई। राजेन्द्र ने यह सब कुछ नोट कर लिया था।

अचानक बिजली फेल हो गई। सारे हाल में अँधेरा छा गया।

राजेन्द्र को शरारत सूझी और वह चुपचाप आकर उस कुर्सी पर बैठ गया जिसपर नीला बैठी थी।

लम्बजी भी आ पहुँचे। अपनी कुर्सी टटोलकर उसपर बैठ गये और बोले—"नीला!"

राजेन्द्र ने बिलकुल धीमे स्वर में कहा—"हाँ।"

चवन्नीवालों ने शोर मचाना शुरू किया। कोई दियासलाई जला-जलाकर उजाला करने लगा। कोई पर्दे पर टार्च चमकाने लगा। कोई सिनेमावालों पर आवाजें कसने लगा।

लम्बजी फिर बोले—"नीला, मैं भी इस फिल्म के नायक की भाँति दुर्लंघ्य हिमालय को फाँद सकता हूँ। यदि, यदि नीला!......"

आवाज भंडाफोड़ कर देगी, इस भय से राजेन्द्र चुप रहा।

लम्बजी ने कहा—"...यदि नीला, तुम्हारा प्रेम मिले तो।"

राजेन्द्र मुंह में रूमाल ठूँसकर अपनी हँसी को रोकने लगा।

"बोलो, बोलो, नीला! कुछ तो बोलो!" कहकर लम्बजी ने राजेन्द्र के निकट अपना मुंह किया।

राजेन्द्र कुछ पीछे को हटा। लम्बजी के मुँह में बदबू आ रही थी।

लम्बजी ने राजेन्द्र का हाथ पकड़ लिया। राजेन्द्र उसे छुड़ाकर भागा और अपनी सीट पर चला गया।

इसके बाद ही मशीन ठीक हो गई और तमाम बिजली के बल्ब जल उठे।

लम्बजी ने खड़े-खड़े उस अन्धकार की समस्या को हल कर रहे थे। अचानक दूसरे सिरे पर बैठी हुई नीला ने आवाज दी -
"लम्बजी!"

लम्बजी हँसते हुए उधर बढ़े और कुर्सी पर बैठते हुए कहने लगे—"नीला, तुम यहाँ किस वक्त आई ?"

"जब तुम बाहर गये थे।"

लम्बजी मन-ही-मन विचारने लगे कि तब मैंने किसका हाथ पकड़-कर अपने प्रेम की कथा सुनाई।

फिल्म फिर शुरू हुआ। लम्बजी खेल के समाप्त होने तक यही सोचते रह गये कि जो उनकी कुर्सी के पास आकर बैठ गया था, कौन था।

खेल समाप्त होने पर नीला को उसके बँगले तक पहुँचाकर लम्ब अपने घर लौटे। घर आते ही उन्होंने दो बेंत लक्की के लगाये। लक्की "पों-पों" करता हुआ, दुम दबाकर बाहर की ओर भाग गया।

खाना खा-पीकर जब लम्बजी का क्रोध हवा हुआ और लक्की की भी पीड़ा शान्त हुई तब फिर अभ्यास शुरू हुआ।

"वन्!"

लक्की तैयार हो गया।

"टू!"

लक्की ने लालटेन मुँह में दबाई। लम्बजी के साथ-साथ चला।

"थ्री!"

लक्की ने लालटेन भूमि पर रख दी।

राजेन्द्र सिनेमा से लौट रहा था। रास्ते में उसे दूसरी ओर से आता हुआ बिहारी मिला।

मिलते ही बिहारी ने कहा—"आज तो लम्बजी साथ-साथ घूम रहे हैं।"

"हाँ। तुम पहचानते हो उसे ? वह है कौन ?"

"नहीं, तुम जानते हो ?"

"मुझे उसका नाम जरूर मालूम है।"

बिहारी राजेन्द्र की कोट का कालर पकड़कर धीरे-धीरे कहने लगा—"कौन है वह ?"

"अधिक तो कुछ मालूम है नहीं। इनकी एक ताजी कहानी जरूर मेरे पास है। साथ चलो तो बताऊँ।"

बिहारी लौटकर राजेन्द्र के साथ हो लिया। राजेन्द्र ने सिनेमा हाल की सारी कथा खूब नमक-मिर्च लगाकर बयान की।

बिहारी ने हँसते-हँसते लोट-पोट होकर कहा—"लेकिन दोस्त यह मिस नीला है कौन ?"

"कल छुट्टी का दिन है। और प्रोग्राम है नहीं, चलो दिन-भर इसी बात का पता लगाया जाय।"

"किस तरह ?"

"तुम जानते ही हो पामिस्ट्री मेरी हॉबी है। मैं उस विषय को लेकर बड़ों-बड़ों को बना सकता हूँ। लम्बू तो ईश्वर के घर से ही मूर्ख पैदा हुआ है।"

"अरे वह बड़ा चलतापुर्जा है।"

"केवल जरा-सी तुम्हारी सहायता की जरूरत पड़ेगी। मैं फारच्यून टेलर का वेश बनाऊँगा। तुम अभी चलकर रायल होटल में कल से मेरे लिये एक कमरा रोजाना किराये में तय करा दो। कल सुबह होते ही तुम लम्बू को किसी तरह फाँसकर मेरे पास भेज देना।

"वह तुम्हें पहचान न लेगा ?"

"मैं सिर पर गेरुआ साफा, माथे पर लम्बा-चौड़ा तिलक, आँखों में नीला चश्मा और नाक पर नकली मोछें लगा लूँगा।"

"आवाज का क्या करोगे ? आदमी का भेद खोल देने में वह भी तो खास चीज है।"

"मैं गूँगा ज्योतिषी बन जाऊँगा। लिखकर अपना मतलब प्रकट करूँगा।"

बिहारी बोल उठा—"खूब !"

बिहारी जाकर उसी वक्त रायल होटल में सात नम्बर का कमरा अपने मित्र गूँगे फारच्यून-टेलर के लिये रिजर्व करा आया।

दूसरे दिन सुबह होते ही बिहारी उन गूँगे ज्योतिषी को उनके साज-सामान-सहित सात नम्बर के कमरे में बसा आया और खुद लम्ब जी के ऊपर जाल डालने चला।

होटल के नौकर ने आकर ज्योतिषी जी का विस्तर खोल पलंग पर फैलाया। ज्योतिषी जी ने कुछ किताबें और जन्तर-मन्तर ट्रंक में से निकालकर मेज पर सजाये।

नौकर उन्हें चाय पिलाकर जाने लगा। ज्योतिषी जी ने ताली बजाकर उसको रोका और ठहर जाने का सकेत किया।

नौकर एक कोने में खड़ा हो गया।

ज्योतिषी जी ने एक खाली विजिटिंग कार्ड निकाला और उसके बीचो-बीच फाउन्टेन से अँगरेजी में लिखा—"दी डम्ब फारच्यून-टेलर, रूम नम्बर सेवन।" कार्ड नौकर को दिया।

नौकर कार्ड लेकर ताड़ गया और कहने लगा—"दफ्तर में जहाँ सब होटल में रहनेवालों के कार्ड रक्खे हैं, वहीं रेक में लगा दूँ ?"

ज्योतिषी जी ने प्रसन्न होकर मूँड़ी हिला दी।

नौकर के जाने के बाद ज्योतिषी जी ने कमरा बन्द कर दिया और बिस्तर पर लेटकर कुछ सोचने लगे।

पाँच ही मिनट के बाद कमरे के बाहर ज्योतिषी जी को किसी के पैरों की चाप सुनाई दी। उन्होंने समझा, आ गये लम्बजी। रड़ से

उठकर कुर्सी में जम गये। एक हथेली का नकशा खोलकर सामने रख लिया और एक कोरे कागज पर आड़ी-तिरछी रेखाएँ खींचकर लगे गणित करने।

आगन्तुक ने द्वार पर उँगली से हलकी चोटें कीं—"खट्-खट्-खट्!"

ज्योतिषी जी ने उठकर द्वार खोल दिया। सामने देखा, ऊँची एड़ी और ऊँचे स्कर्ट में एक सुन्दरी खड़ी है। हाथ में उसके बरमी सनशेड है और गले में गिनीगोल्ड की एक बड़ी महीन जंजीर, होठों में खूब गहरी लिप-स्टिक घिस रक्खी थी। कार्बन की पेंसिल से भौहों को रँगकर कमान की तरह बना रक्खा था। मुख पर पाउडर और उसके ऊपर विषाद की छाया पहने हुए उस सुन्दरी ने ज्योतिषी जी के कमरे में आने की आज्ञा के साथ बाधा के लिये क्षमा माँगी।

ज्योतिषी जी ने उसे बैठने के लिये कुर्सी दी।

सुन्दरी ने अँगरेजी में कहा—"आफिस में आपका कार्ड देखकर इधर चली आई हूं। आप पामिस्ट हैं? भाग्य की रेखा को पढ़ सकते हैं न?"

ज्योतिषी जी ने कागज पर अँगरेजी में लिखा—"कौन पढ़ सकता है? केवल एक क्षुद्र प्रयास करता हूँ।"

सुन्दरी ने उसे पढ़ा। उसका कुछ विश्वास बढ़ा। उसने चमड़े के दस्ताने से निकालकर नई खिली हुई रक्त कमल की कली-सी हथेली ज्योतिषी जी की ओर बढ़ाई।

ज्योतिषी जी ने मेज पर से आतशी शीशा उठाया और विधाता की लिपि को पढ़ने लगे।

रेखाओं का अध्ययन करते-करते उन्होंने कागज पर लिखा—"एक बार प्राण-संकट से रक्षा पाई है?"

"हाँ, जिस गाड़ी से यात्रा कर रही थी वह पटरी पर से गिर पड़ी थी।"

ज्योतिषी जी ने फिर लिखा—"जिस बात की इच्छा करती हो वह पूरी नहीं होती। कभी-कभी बिलकुल उसके विपरीत फल मिलता है। सूर्य की रेखा अभी विकासावस्था में है। इसके पूर्ण हो जाने पर भाग्य चमक उठेगा। जिसको हृदय से चाहती हो वही तुम्हारा अपमान करता है!"

गोरी रमणी ने मेज पर हाथ पटककर कहा—"यही बात है मिस्टर पामिस्ट! यही बात है! मेरा पति रेलवे-स्टेशन में नौकर है। मैं प्रेम-पूर्ण हृदयसे उसकी प्रतीक्षा करती हूँ और वह सेनीमा, भोजन और नाच-गृहों में अपनी प्रेमिकाओं के साथ विहार करता फिरता है। आफिस से सीधा घर आना कभी सीखा ही नहीं। उन्हीं की टोह में चला जाता है। मैं रात को एक-एक दो-दो बजे तक भोजन लिये उसकी राह देखती रह जाती हूँ। कल रात वह तीन बजे वापस आया। मेरे मुख से एक शब्द निकला था कि मुझे पीट दिया। क्या करती? कब तक सहन होता? घर छोड़कर होटल में चली आई हूँ। मेरे दुख के दूर होने का कोई उपाय बताओ। मैं तुम्हारी पूरी फीस दूंगी।"

उधर बिहारी सीधा लम्ब जी के घर पर पहुंचा। वह अभी उठा ही था, लेकिन शय्या का त्याग नहीं किया। सामने मेज पर एक जासूसी उपन्यास के आधार में दर्पण रक्खा था। एक ओर एक प्याले में चाय और दूसरी तरफ एक बर्तन में गरम पानी रक्खा था। दियासलाई की डिबिया के ऊपर जलती हुई सिगरेट विराजमान थी। एक बगल में सेपटी अस्तुरा रक्खा था, दूसरी में साबुन और ब्रश।

लम्बजी ने सीटी बजाते हुए ब्रश से पानी लेकर दाढ़ी भिगोई। फिर उसपर जरा-सा साबुन रगड़ दिया। एक घूँट चाय निगली फिर सिगरेट की दम खींची और सिगरेट वहीं पर रख दी। फिर ब्रश से

गाल पर साबुन का झाग उठाया और नाक तथा मुख के रास्ते से सिगरेट का धुआँ मुक्त कर दिया। इसके पश्चात् जरा देर सीटी बजाकर फिर अस्तुरा ले दो-ढाई वर्ग इंच चमड़ा साफ किया।

बिहारी को आता देखकर लम्बजी ने अस्तुरा रोककर कहा—"आइए, आइए! आज सुबह-सुबह कैसे दर्शन दिये?"

बिहारी ने गंभीर होकर कहा—"सुना है, तुम्हारे चाचा जी के पास भोजपत्र है। एक छोटा-सा टुकड़ा चाहिए।

"क्या करोगे?"

"रायल होटल में सात नम्बर के कमरे में एक ज्योतिषी जी महाराज आये हैं। मौनी हैं। किसी से बोलते नहीं। लेकिन क्या कहूँ मित्र! तीन लोक और तीन काल की जानते हैं। उन्हीं ने भोजपत्र मँगाया है, एक यंत्र लिख देने के लिये।"

लम्बजी ने दाढ़ी पर ब्रश घिसते हुए कहा—"आश्चर्य है दोस्त! तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई सब बेकार हुई। ऐसी एरेबियन नाइट्स की-सी बातों में विश्वास करते हो?"

"समझता तो मैं भी पहले ऐसा ही था। लेकिन जब उन्होंने मेरे दिल की सातवीं तह में छिपी हुई बात निकालकर सामने रख दी तब मैंने समझा, ज्योतिष कोरा गपोड़शंख नहीं, एक विद्या है, विज्ञान है।"

लम्बजी ने नौकर को आवाज देकर कहा—"एक प्याला चाय ले आ।"

बिहारी बोला—"चाय तो रहने दो, पी चुका हूं। हाँ, भोजपत्र का एक छोटा-सा टुकड़ा मंगा दो।"

"अच्छा, चाय रहने दे। इधर आ!"

"संसार के तीन चक्कर लगा चुके हैं। महाद्वीपों की सात भाषाएँ जानते हैं। बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के सार्टिफिकेट उनके पास हैं।

हाल में ही उन्हें ईरान के शाह का निमंत्रण मिला है। एक-दो दिन में हवाई जहाज से वहाँ जानेवाले हैं।"

"तब तो जरूर एक बार उनके दर्शन को जाना चाहिए।"

नौकर आ पहुँचा था। लम्बजी ने उससे कहा—"मेज पर की ये चीजें उठाकर रख। अस्तुरा साफ कर दो। पहले जा, चाचाजी से एक टुकड़ा भोजपत्र माँग ला।"

बिहारी बोला—"अभी चले जाओ। कदाचित् फिर मौका मिले या नहीं। लोग उनको घेरे रहते हैं।"

"अच्छी बात है, अभी जाता हूँ। वे मेरे मन की बात बता देंगे?"

"बता ही नहीं देंगे, उसके यथाशीघ्र पूरी होने के लिये उपाय भी समझा देंगे।"

"देख लिया जायगा। अभी सारी परीक्षा हुई जाती है। पता क्या कहा था?"

"रायल होटल सात नम्बर का कमरा। फाटक के बिलकुल सामने है। एक खास बात और ज्योतिषी जी को पैसे का लोभ अधिक नहीं है।"

नौकर भोजपत्र का टुकड़ा लेकर आ गया था। बिहारी उसे ले धन्यवाद देकर विदा हुआ। लम्बचन्दर ने नया सूट पहना और छड़ी हाथ में लेकर सोटी बजाते हुए रायल होटल के लिये गाड़ी में विराजमान हो गये।

होटल में पहुँचकर लम्बजी सीधे ज्योतिषी जी के कमरे की ओर बढ़े। वहाँ एक मेम को देखकर कुछ सकुच गये। ज्योतिषी जी ने उन्हें अन्दर चले आने का इशारा किया।

लम्बजी ने झुककर उन्हें प्रणाम किया। ज्योतिषी जी ने कुर्सी की ओर संकेत किया। लम्बजी उसमें बैठ गये।

मेम साहब अपना सनशेड सँभालकर उठ खड़ी हुईं और बोलीं—"अच्छी बात है। फिर आपके दर्शन करूँगी।"

ज्योतिषी जी भी उठे। मेज पर पाँच रुपये का एक नोट पड़ा था, उसे लेकर सिर हिलाते हुए मेम साहब को लौटाने लगे।

मेम साहब जाते-जाते बोलीं—"मैं आपके उत्तरों से परम संतुष्ट हुई हूँ। यह आपका पारिश्रमिक है। इसे आपको स्वीकार करना ही चाहिए।"

ज्योतिषी जी नहीं माने। जबर्दस्ती उसका नोट उसे लौटा ही तो दिया। मेम साहब चली गईं।

इस बात का लम्बजी पर बड़ा गहरा असर पड़ा।

ज्योतिषी ने कागज पर लिखकर लम्बजी से पूछा—"क्या चाहते हो?"

लम्ब जी ने कहा—"आप ज्योतिषी हैं न। बतलाइए, क्या चाहता हूँ?"

ज्योतिषी ने लम्बजी के हाथ की परीक्षा करके लिखा—"चाहते क्या हो? एक छोकरी पर रीझ गये हो।"

लम्ब जी घबड़ाये।

ज्योतिषी ने फिर लिखा—"किसी रंग पर उसका नाम है।"

लम्बजी और भी अधिक चकराये।

ज्योतिषी ने फिर कागज पर कलम दौड़ाई—"हाँ, नीला उसका नाम है।"

लम्बजी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, बोले—"ठीक है। कोई और बात बतलाइए।"

ज्योतिषी ने लिखा—"आपके माता-पिता कोई नहीं हैं। खाने-पीने को भगवान् ने खूब दे रक्खा है। दस और बारह साल के बीच में कभी ऊँचे पर से गिरे हो।"

लम्बजी ने कहा—"अच्छा यह तो बतलाइए, नीला को भी मेरे लिये इतनी आकुलता है?"

"कितनी ?"

"जितनी मुझे उसके लिये है।"

"पड़ी है उसकी जूती को।"

"वह मुझे नहीं चाहती ?" लम्ब जी ने घबड़ाकर पूछा। "नहीं" —ज्योतिषी ने बहुत स्पष्ट लिखा।

"कोई उपाय ऐसा नहीं है कि वह मुझे प्यार करे और उसके पिता डाक्टर तुम्बुरु उसका विवाह मेरे साथ कर दें ?"

"है क्यों नहीं।" राजेन्द्र को नीला का परिचय मिला।

"कौन-सा ?"

ज्योतिषी जी कुछ देर ध्यानमग्न हुए। फिर एक यन्त्र निकालकर लम्बजी को दिया और लिखा—"इस यन्त्र को नीला के सिरहाने अपने हाथ से रख सकते हो ?"

"हाँ, क्यों नहीं।"

"अच्छी बात है। दो पैसे का सिंदूर ले जाना। आँखें बन्दकर सिंदूर बिखराते हुए उसके पलंग की सात परिक्रमा कर सकते हो ?"

"हाँ, हाँ।"

"अगर परिक्रमा पूर्ण होने से पहले आँखें खुल गईं तो सारा गुड़ गोबर हो जायगा।"

"नही खुलेंगी।"

"अच्छी बात है। आपका काम हो गया। आप जा सकते हैं।"

लम्बजी मन-ही-मन बिहारी को उसकी शुभ सूचना के लिये धन्यवाद देते हुए घर लौटे।

खाना खा-पीकर उन्होंने संध्या के बाद नीला के यहाँ जाना निश्चित किया। पलँग की परिक्रमा करने के लिये वही अवसर सबसे अधिक उपयुक्त था। क्योंकि अक्सर उस समय डाक्टर साहब के घर के सब लोग बंगले को नौकर-चाकरों पर छोड़कर घूमने-घामने निकल जाते थे।

लम्बजी ने लक्की को बुलाया और उसको अभ्यास कराने लगे।

संध्या-समय दीपकों के प्रकाशित हो चुकने के बाद लम्बजी ने लक्की के मुँह में जलती हुई लालटेन दी और उसे साथ लेकर डाक्टर तुम्बुरु के बँगले की यात्रा की।

सौभाग्य से उस समय वहाँ डाक्टर साहब, उनकी पत्नी तथा नीला में से कोई भी न था। बैठक के बाहर बरामदे में उनका नौकर बगट्ट बैठा हुआ था। महाराज बँगले के पिछले भाग में अलग बने हुए किचन में खाना पका रहा था।

लम्बजी ने आते ही बगट्ट से पूछा—"कहाँ हैं ?"

"दावत में गये हैं।"

"सब ? डाक्टर साहब भी ?"

"हाँ, बैठिए, कुछ देर में आ जायँगे।" कहकर बगट्ट ने देखा मुह में लालटेन लिये हुए कुत्ता ! वह उधर आकृष्ट हुआ।

लम्बजी ने "थ्री" कहा।

लक्की ने लालटेन भूमि पर रख दी।

बगट्ट खुश होकर बोला—"वाह सरकार, क्या परेट सिखाई है।

लम्बजी ने लालटेन एक कोने में सँभालकर रख दी और वहीं लक्की को बैठ जाने की आज्ञा दी।

अचानक कुछ ध्यान आते ही लम्बजी ने पूछा—"मिस नीला के कमरे में अंधेरा है ?"

"हाँ, बल्ब खराब हो गया है। दूसरा है नहीं। लौटते समय खरीद लावेंगी। कह गई हैं।"

लम्बजी ने मन-ही-मन कहा—"चलो यह भी अच्छा लक्षण है।"

"चलिये आप बैठक मे बैठिए"—बगट्ट बोला।

"अकेला ही क्या करूँगा ?"

"अखबार पढ़िये। अभी ताजा आया हुआ मेज पर रक्खा है।"

'अच्छा एक पैकेट सिगरेट का ले आओ।'

पैसे लेकर बरद्दू चला गया। लम्बजी ने जेब से यन्त्र और सिन्दूर की पुड़िया निकालकर बैठक में प्रवेश किया। बैठक के बाद ही एक ओर मिस नीला का शयन-गृह था। बैठक से भी उसमें जाने का द्वार था।

लम्बजी ने पर्दा उठाकर सावधानी से नीला के अँधेरे कमरे में प्रवेश किया। नीला के कमरे से एक दरवाजा सहन की ओर खुलता था। सहन के सामने किचन था। लम्बजी ने उधर झाँका। नौकर बर्तन मलते हुए धीरे-धीरे गुनगुना रहा था—"छोटे से बलमा मोरे आँगना में घुइयाँ छीलें...' और महराज अपने तथा नौकरों के लिये रोटियाँ सेंक रहा था।

लम्बजी ने फुर्ती के साथ यन्त्र को नीला के तकिये के नीचे रख दिया और डबल मार्च में भूमि पर सिन्दूर बिखराते हुए नीला के पलंग की प्रदक्षिणा करने लगे।

एलबर्ट ब्रिज के पास एक दुर्घटना हो गई। एक सेठजी का कार ईंटों से भरे हुए ठेले से टकरा गया। ड्राइवर बाल-बाल बच गया, पर सेठजी के बायें हाथ में कम्पाउण्ड फ्रैक्चर हो गया।

डाक्टर तुम्बुरु का अस्पताल निकट था। सेठजी फौरन ही वहाँ पहुँचाये गये। डाक्टर साहब को उसी वक्त अस्पताल चले आने के लिये कम्पाउण्डर ने फोन किया।

दावत छोड़कर डाक्टर साहब कार में अस्पताल की ओर लपके। मार्ग में उन्हें चाबी की याद आई। कार से उतर चाबी लेने को अपने बँगले के अन्दर चले। जब वे बैठक में प्रवेश कर रहे थे, उस समय लम्बजी की तीसरी परिक्रमा शुरु हो रही थी।

चाबी बरद्दू के पास थी। उसे वहां न देखकर डाक्टर साहब ने आवाज दी—"बरद्दू!" इसके साथ ही उन्होंने नीला के कमरे में प्रवेश किया।

"बरट्ट !"

बरामदे के कोने में ऊंघते हुए लक्की ने सुना—"बनट्ट !"

वह तुरन्त ही रेडी हो, मुंह में लालटेन दबाकर तैयार हो गया।

डाक्टर साहब सीधे किचन की ओर जा रहे थे। लेकिन लक्की और उसकी लालटेन ने उनका ध्यान लम्बजी की ओर खींचा। उन्होंने एक अजीब दृश्य अपने सामने देखा। उनके मुँह से निकल पड़ा—"हैं यह क्या ?"

लम्बजी ने अचकचा कर आंखें खोल दीं, परिक्रमा बन्द कर सिन्दूर की पुड़िया जेब में रख ली और हृदय को हाथों से दबाकर बोले—"डाक्टर साहब, बड़ी बेचैनी है। फिर वही दिल की बीमारी।"

डाक्टर तुम्बुरु ने क्रोध और शङ्का-भरे स्वर में कहा—"नहीं दिल की तो नहीं, यह बीमारी दिमाग की जरूर मालूम पड़ती है।...तुम इस अँधेरे में यह क्या कर रहे थे ?"

"कुछ नहीं डाक्टर साहब ! नीला के पास मेरी एक किताब थी ! उसकी सख्त जरूरत आ पड़ी है। लाइब्रेरी से रिमाइण्डर आया है।" कहते हुए लम्बजी ने कुछ ढूंढने का नाट्य किया।

"नहीं,, यह उत्तर सन्तोष-जनक नहीं ! तुम्हारे हाथों में यह लाल-लाल क्या है ? सिन्दूर ? तुमने उसे तमाम दरी पर भी बिखरा दिया है। बड़े खतरनाक आदमी मालूम देते हो ! निकल जाओ यहाँ से अभी !"

लम्बजी घबड़ाकर डाक्टर साहब के निकट आये और बोले—"दिल बड़ी तेजी से धड़क रहा है डाक्टर साहब, सिर भी चकरा रहा है।"

"फ़िजूल मत बको। निकलो, निकलो मेरे बँगले से। अगर तुमने फिर यहां आने की हिम्मत की तो तुम्हें बड़े घर भेजना पड़ेगा। वहींकी आब-हवा से कदाचित् तुम्हारी बीमारी दूर होगी। ऐसे ही न जाओगे ? बुलाऊँ किसी को ?"

लम्बजी चुपचाप सिर नीचा कर निष्कांत हुए। फाटक पर उन्हें बंटू मिला।

सिगरेट का पैकेट देते हुए बंटू बोला—"क्या चल दिये बाबू जी?"

"हाँ। जाओ, डाक्टर साहब तुम्हें पुकार रहे हैं।"

"आ गये?"

"हाँ।"

बंटू घबड़ाया हुआ उधर भागा।

फाटक के बाहर आकर लम्बजी ने अपना सारा क्रोध बेचारे लड़के के ऊपर निकाला। एक लात उसके ऐसी जमाई कि लालटेन फेंककर चिल्लाता हुआ वह एक ओर को भागा। दूसरी लात लालटेन पर ऐसी मारी कि वह लुढ़कती हुई नाली में गिर पड़ी।

इसके बाद लम्बजी ने तांगा किया और सीधे रायल होटल में तशरीफ ले गये। सात नम्बर का कमरा बन्द था, लेकिन अन्दर रोशनी थी और कोई जोर-जोर से हँस रहा था।

लम्बजी ने बाहर से द्वार खटकाया। द्वार खुले। देखा, बिहारी मौजूद है और ज्योतिषी जी का सामान पैक किया जा चुका है।

बिहारी ने कहा—"आइए लम्बजी! चेहरा क्यों उतरा हुआ है? कुशल तो है?"

लम्बजी—"चेहरा तो उतरा हुआ नहीं है। कहो, तुम कैसे आये?"

बिहारी—"ऐसे ही। और तुम?"

लम्बजी—"एक प्राइवेट काम से।"

बिहारी ने हँसी दबाकर कहा—"तब तो मैं चला।"

बिहारी के जाते समय ज्योतिषीजी ने उसे लिखकर दिया कि होटल के बिल का पेमेंट कर देना और एक ताँगा भिजवा देना।

बिहारी के जाने के बाद लम्बजी बोले—"महाराज, बड़ी मुश्किल में पड़ गया !"

ज्योतिषीजी ने लिखा—"प्रयोग किया ?"

"हाँ, लेकिन प्रयोग पूरा होने से पहले ही आँखें खुल गईं। अब कोई दूसरा उपाय बताइए।"

होटल के ब्यवा ने आकर बड़े अदब और कायदे के साथ कहा—"ताँगा हाजिर है सरकार !"

लम्बजी ने हाथ जोड़कर कहा—"मुझे तो कोई तरकीब बताये जाइए महाराज !"

ज्योतिषीजी ने लम्बजी को धीरज दे ब्वाय का ध्यान लगेज की ओर किया। लगेज ताँगे में रक्खा गया। नौकरों को इनाम देकर ज्योतिषीजी ने लम्ब को साथ लिया और ताँगे में बैठे।

ताँगेवाले ने पूछा—"किस तरफ हजूर !"

ज्योतिषीजी ने मार्ग की ओर संकेत किया। ताँगा चला।

लम्बजी गिड़गिड़ाये—"बड़ी आफत में फँस गया हूँ महाराज ! नीला के पिता ने मुझसे कह दिया है कि खबरदार अब मुँह मत दिखाना। कोई उपाय बताइए। आपकी शरण हूँ !" और ज्योतिषीजी के चरणों में अपना सिर रख दिया।

ज्योतिषीजी ने झट अपनी आँखों पर का चश्मा और नकली मोछें उतार डालीं।

लम्बजी ने उधर दृष्टि डाली। सारा दृश्य ही बदल गया था। उन्होंने आँखें फाड़-फाड़कर देखा और कहा—"राजेन्द्र ! राजेन्द्र !"

"बड़े धैर्य के साथ राजेन्द्र ने कहा—"हाँ, कहो।"

"बेईमान ! तुझे शर्म नहीं आई !"

"शर्म तुझे आनी चाहिए। शरीफ बनते हो और ऐसे मार्ग से चलते हो ?"

लम्बजी का मुख क्रोध से लाल हो गया। बिना कुछ उत्तर दिये ही वे ताँगे पर से कूद पड़े और गिरते-गिरते बचे।

ताँगेवाले ने घबड़ाकर पीछे की ओर देखा।

राजेन्द्र ने कहा—"कोई चिन्ता की बात नहीं है। चलो, वीनस स्क्वायर की ओर।"

—*:*—

प्रेम-पुष्पांजलि

लेखक—स्वर्गीय चंडीप्रसाद 'हृदयेश' बी० ए०

(१)

Some feelings are to mortals given
With less of carth in them than heaven.

—*Walter scott*

एताश्चलद्वलयसंहतिमेखलोत्थ-
झंकारनूपुरपराजितराजहंस्यः।
कुर्वन्ति कस्य न मनो विवशं तरुण्यो
विस्रस्तमुग्धहरिणीसदृशैः कटाक्षैः।

—श्रीभर्तृहरियोगीन्द्रस्य

तांत्रिक तंत्र में, मंत्र-शास्त्री मंत्र में, जन-साधारण प्रभुत्व में, योगी चित्त-वृत्ति-निरोध में और प्रेम-प्रभु का पुजारी कवि रूप में आकर्षण का निवास बताते हैं। तब इन सबसे अधिक प्राबल्य किसमें है ?

अन्य सब में केवल आकर्षण हैं; रूप में आकर्षण और आत्म-समर्पण करा लेने की भी शक्ति है। हृदय-कंज आकृष्ट होकर हर्ष-पूर्वक अपने अनुराग को प्रकट करके, अपने पराग से आराध्य देव के पा-पद्म रंजित करता है। तंत्र, मंत्र और प्रभुत्व दासत्व जनक हैं, योग चित्त-वृत्ति का अवरोधक है, रूप चित्त को सीमाबद्ध करके चित्त-वृत्ति का प्रसारक है। योग भी अनंत के अनंत रूप में अपनी साधना का फल देखता है। रूप भगवान् का प्रकाशमय स्वरूप है, इसी रूप पर आज तक असंख्य हृदय निछावर हो चुके। हृदय की गति हृदयेश तक है। और हृदयेश ? हृदयेश तो सौंदर्य-सुधा के सिन्धु हैं।

निर्बोध बालक हँसते हुए चंद्रदेव का वदन-मंडल देखता है, अज्ञान कोकिल निकुंज-भवन में मजरी-समाच्छादित रसाल पर बैठी हुई रस-भरी कूक में ऋतुराज के सौन्दर्य का अलाप अलापती है, जड़ तमाल मालती लता को लावण्यमयी प्रेम प्रतिमा प्रियतमा की भाँति, अपने वक्षःस्थल पर धारण करता है। मनुष्य यदि किसी सौंदर्य की देवी के पाद-पद्मों में हृदय-पद्म की अंजलि देकर आत्मसमर्पण कर दे, तो इसमें आश्चर्य क्या है ?

सौंदर्य इन्द्रजाल है। इसके प्रभाव से मनुष्य अपना प्रकृत वेश परित्याग करके अन्य वेश धारण करता है। कठोर हृदय इस रूप के सम्मुख कोमल हृदय हो जाता है, महान् कृपण प्रियतमा के सौन्दर्य पर सारा विभव लुटा देता है। सौन्दर्य पर प्राण देने में तब क्या पाप है ?

सोचते-सोचते रात्रि के आठ बज गए। आज दिन-भर वर्षा होती

रही। कभी नन्हीं-नन्हीं बूँदें पड़ने लगतीं, कभी धाराग्राही जल गिरने लगता और कभी एक बारगी, वियोग के अश्रु-प्रवाह की भाँति, कुछ देर को मेह बंद हो जाता था। समय का परिवर्तन सहसा होता है, श्याम घन के कृष्णावरण से निकलकर चंद्रदेव, चन्द्रमुखी नायिका की भाँति, अंबर-प्रदेश में हँसने लगे। मैं सोचने लगा—"जिस चन्द्रकला को आज स्टेशन पर देखने जाना है, वह कौमुदी से कितनी अधिक कांतिमती है?"

ट्रेन अर्द्धरात्रि के समय छूटती है, आज जिस 'रूप की देवी' के दर्शन को स्टेशन जाऊँगा, वह इस नगर की अलौकिक छवि को हरकर दूसरे नगर में प्रकाश प्रसारित करने को प्रस्थान करेगी। मैं नहीं जानता कि मुझे चंद्रकला पहचानती है या नहीं; किन्तु मैंने उसको कई बार देखा है। अपूर्व सौन्दर्य है, अलौकिक लावण्य है, स्वर्गीय प्रभा है। आज चंद्रकला अपनी ज्येष्ठा भगिनी कलावती के साथ जायगी। कहाँ? सो पाठक-पाठिकाओ, आपको पूछने का अधिकार नहीं।

हृदय का उद्वेग वेग-पूर्वक बढ़ने लगा। मैं भाई से किन्हीं श्याम-सुन्दर-नामक मित्र के आने का बहाना करके अपने मूढ़ मन को बहलाने चला। सघन घन फिर आ-आकर नभ-प्रदेश में एकत्र होने लगे, चंद्रमा का चारु मुख फिर ढक गया। श्याम घन के अंक में दामिनी-कामिनी अपने अपरूप चांचल्य के साथ केलि करने लगी, रात्रि के घोर अंधकार में केवल वह दामिनी का चारु हास्य ही मुग्ध पथिक का एक-मात्र अवलंब है।

अभी मैं मार्ग ही में था कि पानी बरसने लगा। मेघ अधिक गर्जन करने लगे। विभावरी के घोर अंधकार में, पंक-पूर्ण मार्ग से होकर, हृदय की चिंता-सहचरी का साहचर्य पाकर, मैं स्टेशन के सामने चला।

सोचने लगा—"सौंदर्य की प्रबल सुरा में इतनी उन्मत्तता क्यों? सौंदर्य-दर्शन में भी क्या इस घोर तप की आवश्यकता है।"

एक ओर पपीहा बोला—"पी कहाँ, पी कहाँ।" मैंने मन में कहा—'पपीहा पी को पुकारता है। पी सुनता नहीं। तो क्या पुकारने-वाला निराश होकर प्राण दे देता है, अथवा उसकी करुण ध्वनि प्यारे के कर्ण-कुहरों में भी कभी प्रवेश करती है?" वायु प्रबल वेग से बहने लगा, मुझे चिन्ता नहीं। वर्षा का वेग बढ़ा, हृदय की उत्कंठा बढ़ी। उस निर्जन पथ पर, तिमिराच्छादित यामिनी के द्वितीय प्रहर में, अपने हृदयाकाश के अन्तिम छोर पर चमकते हुए उस एकाकी नक्षत्र को लक्ष्य बनाकर, मैं प्रकृति की विघ्न-बाधाओं को बाधा देकर बढ़ने लगा।

स्टेशन अब दूर नहीं। पास ही एक लालटेन के क्षीण आलोक में घड़ी निकालकर देखा, नौ बजे हैं। सोचा, अभी ट्रेन में पूरे एक पहर की देर है। इतना देर पहले आकर मैंने मूर्खता की, किन्तु रूप तो मूर्ख बनाता ही है। तब क्या सौंदर्य हृदय और मस्तिष्क पर समान अधिकार रखता है?

(२)

जो मजा इन्तजार में पाया,

वह नहीं वस्ले-यार में पाया।

—कस्यचित्कवेः

दो-तीन दिन पहले मुझे पता था कि चंद्रकला अमुक तारीख को रात की ट्रेन से जायगी। चंद्रकला चाहे मुझे भलीभाँति न जानती हो, किन्तु मैं उसका पता रखता हूँ। पाठक महाशय! क्षमा करें। रूप की मंदाकिनी के प्रवाह में आज से नहीं, कई महीनों से पड़ा हुआ बहता चला जा रहा था।

सौंदर्य का पार्थिव वेश, नन्दन-कानन के सौरभमय सुमन की भाँति,

समस्त संसार को सुवासित करता हैं। कौन नहीं जानता कि जीवन-साहचर्य के लिए सुन्दरता की कितनी आवश्यकता है।

स्टेशन पर आकर मैंने पहले ही यात्रियों के विश्राम-स्थान देखे। देखा, अभी चंद्रकला का उदय नहीं हुआ। अब मैं अपने विश्राम-स्थल की खोज करने लगा।

पानी का वेग कुछ कम हो गया था, अलबेला बेला नहा-धोकर अपने इत्र से सारे स्टेशन को सुवासित कर रहा था। कई एक लताएँ, गैस के उज्ज्वल आलोक में चित्र-विचित्र-कुसुमभूषिता होकर, अपने अपूर्व यौवन का परिचय दे रही थीं। स्टेशन के एक ओर एक पीले कनेर का तरु है। वृक्ष उस समय अपनी विभूति के सर्वोच्च शिखर पर था, उसकी कुसुम-संपत्ति अपार थी। बीच में आज वासन्ती रंग का बिछौना बिछा था। मैं उसी वृक्ष के नीचे बैठ गया। यद्यपि इस समय नन्हीं-नन्हीं बूँदों की फुहार पड़ रही थी, किन्तु विटपवर मुझे सुमन तोयांजलि से परितृप्त करते रहे।

मैं सोचने लगा—"जीवन के घोर तम को विदीर्ण करने के लिए ही क्या सौंदर्य-सुधाकर की सृष्टि हुई है? अमावास्या की भयभीत यामिनी में; जीवन-मंदाकिनी के भीषण प्रवाह में, कर्ममेघ की निरन्तर जलवृष्टि में अतुल विघ्न-बाधाओंके सम्मुख सौंदर्य कितना सहाय होता है—रात्रि के पिछले पहर में, दीपक के क्षीण आलोक में, मरणोन्मुख व्यथित के लिए सौन्दर्य कितना शान्तिप्रद होता हैं, यह क्या कोई वर्णन कर सकता है?"

एक घोड़ा गाड़ी आई। उठकर देखा, किन्तु निराशा! मेरे मन में विचार उत्पन्न हुआ—"निराशा क्या आशा के मार्ग में व्याघात डालती है? कभी-कभी तो उत्कट। निराशा से प्रबल आशा का जन्म होता है।"

मैं फिर अपने विश्रामस्थल से उठा। इतने घोर अन्धकार में भी गैस का दीपक सकल विघ्नों को पद-दलित करता हुआ, अपने तीक्ष्ण प्रताप से अरि-कुल का नाश कर रहा था। 'रात्रौ वृक्षान्न कम्पयेत्' ऐसा

शास्त्र का वचन है, किन्तु तो भी मैंने थोड़े से बेले के सौरभमय कुसुम तोड़ लिए। कुसुम की सुकुमारता, कुसुम की कमनीयता, कुसुम का लावण्य और कुसुम की सुवास चन्द्रकला की सुकुमारता, कमनीयता, लावण्य और सुरभित श्वास की बराबरी कर सकते हैं या नहीं, मुझे इस विषय में अधिक अनुभव नहीं है।

मैं फिर थोड़ी देर फिरकर अपने विश्रामस्थल पर आकर बैठ गया। अब की बार सौन्दर्य का उपासक संगीत अपने पद-झंकार से मोहित करने लगा। एक ओर से गाने की ध्वनि सुनाई दी; साथ ही बाँसुरी का मधुर रव भी कर्णगोचर हुआ। अपूर्व समय था। उस अन्धकार को विदीर्ण करते हुए, सुरभित गम्भीर लहरी में मिलकर संगीत-लहरी लहरें लेने लगी। मैं एकाग्रचित्त होकर सुनने लगा। सुनते-सुनते प्रतीत होने लगा मानो हिमाचल के तुङ्ग शिखर पर बिहार करते समय मंदाकिनी और अम्बालिका की मधुर नूपुर-ध्वनि से आज पृथ्वी-मंडल मुखरित हो रहा है। गान-लहरी क्रमशः बढ़ने लगी। तन्मय होकर उसी लहरी के स्वर में स्वर मिलाकर मैं भी धीरे-धीरे गाने लगा—

गान

कहहु कित छाए प्रिय घनश्याम ;
मोहन मदन, मनोहर मूरति, सजल जलद अभिराम।

कुंज कुंज बिच ढूँढ़ फिरी मैं, मिले न कहुँ मोहिं श्याम;
आवहु मोहिं बचावहु प्यारे, नित मारत मोहिं काम।

सून्यो सब सुख साजबाज अब, तज्यो चहत आराम ;
अब 'हृदयेश' देश तजि जैहै, नहिं घर सों कछु काम।

कितनी ही देर तक गाता रहा; वह सङ्गीत-लहरी भी बन्द हो गई। घड़ी में देखा १०॥ बज चुके हैं। लाइनक्लीयर होनेवाला है, किन्तु अभी चन्द्रकला की गाड़ी का पता नहीं। सोचने लगा—"क्या आज ऐसे

भीषण समय में चन्द्रकला न जायगी ?'' निराशा ने फिर आशा पर प्रभुत्व स्थापित किया। आशा फिर भी मलिन वेश में हृदय-देश के एक कोण में खड़ी होकर मेरी ओर देख-देखकर हँसने लगी। मैंने सोचा, अभी आशा में जीवन की ज्योति है।

लाइनक्लीयर हो गया; पैंटमैन ने उस अन्धकारमयी निशा में घण्टा झंकार के साथ चिल्लाकर कहा—'गाड़ी छोड़ी'। मालूम हुआ, मुझे भी किसी ने छोड़ा; हृदय पर आघात हुआ, क्या आज भी भाग्य का उदय नहीं हुआ ? आशा-कौमुदी पर फिर प्रहार होने चाहता है! हृदय को निर्बोध बालक की भांति फिर बहलाया।

गाड़ी छूटने में अब केवल २० मिनट देर है। इतने ही समय में आशा का विकास अथवा ह्रास हो जायगा।

क्या रजनी की तमसाच्छादित मूर्ति में आशा मुझे छोड़कर चली जायगी ?

(३)

राधावदनविलोकनविकसितविविधविकारविभंगम्।
जलनिधिमिवविधुमण्डलदर्शनतरलिततुङ्गतरङ्गम्।
हरिमेकरसं चिरमभिलषितविलासम्।
सा ददर्श गुरुहर्षवशंवदवदनमनंगविकासम्।

—महाकवि जयदेव।

Give but a glimpse and Fancy draws
Whate'er the Crecian Venus was.

Edward Moore

लीजिए! सिगनेल डाउन हो गया। मैंने हृदय में सोचा—'मायाविनी आशा का मधुर आश्वासन क्या अन्तिम काल तक रहता है? आशा के अन्त पर या अनन्त का निवास है? 'आशा के संग में बड़ी

मधुरता है; किन्तु क्षीरसागर में शेष का निवास क्या खटकता नहीं है ?"

एक घोड़ा-गाड़ी का लम्प दूर ही से रात्रि की घोर कालिमा के नाश का दुःसाहस करता हुआ दृष्टिगत हुआ; व्यथित कोकिल एकदम कूक उठी; निराशा के चंगुल में फँसी हुई आशा फिर एक बार पिंजड़ा तोड़कर निकलने का प्रयत्न करने लगी।

तरुवर के नीचे से उसी क्षण उठकर मैं बाहर आया। गाड़ी को उतनी दूर चलने में आधा मिनट लगा। मुझे मालूम हुआ, अब कलियुग का प्रथम चरण बीता।

गाड़ी आकर खड़ी हुई। पहले गाड़ी के अन्दर से एक पुरुष निकला। सम्भवतः चन्द्रकला इन्हीं की कोई सम्बन्धिनी है। उनके बाद ही नौकर ने उतरकर कुलियों के सिर पर असबाव लादना शुरू किया। अब कलावती, षोडश शृङ्गार-कलाओं का विस्तार करती हुई, उस भीषण तम में भी प्रकाश का आभास करती हुई, मत्त कल्लोलिनी की भाँति नूपुर-रव करती गाड़ी से नीचे उतरी। इसके उपरान्त पाठक-पाठिकाओं—इसके उपरान्त संसार का सार, कान्ति की सीमा, मधुरता का अपूर्व विलास, सौन्दर्य-कुसुम का पूर्ण प्रकाश और हृदय की मूर्तिमती कल्पना, विभावरी के सूचीभेद्य अन्धकार-राशि में अनुपम विभा का विस्तार करती हुई नंदन-तरु-कानन के कल्प-कुसुम की कमनीयता का परिहास करती हुई, मातंगिनी को मतवाली करती हुई, मरालमाला को पराजित करती हुई, जीवन के कंटक-पूर्ण मार्ग की आलोक-माला की भाँति गाड़ी से नीचे उतरकर खड़ी हुई। मैं स्तब्ध हो गया। सम्भवतः एक मिन -भर के लिए मै संज्ञा-हीन हो गया।

चन्द्रमा के स्वाभाविक प्रकाश पर गैस का प्रकाश पड़ा। शुभ्र सारी के अभ्यन्तर से शीश-भूषण चमक उठा। चन्द्रमा भीत होकर फिर श्याम घन के अंक में छिप गया। पानी फिर बरसने लगा।

नौकर ने जाकर बरामदे में असबाव रक्खा। वहीं पर एक थोड़ी-

सी जगह में कल्पमंजरी के गुच्छ-युगल खड़े होकर उस शीतल समीर को सुवासित करने लगे। मेरा तरुवर बिलकुल निकट ही था। मैं वहाँ से, पल्लवों के अभ्यंतर से, अन्धकार में बैठा हुआ उनकी रूप-प्रभा देख सकता था। मैं वहाँ बैठे-बैठे उस अपूर्व सौरभ को सूँघकर उन्मत्त हो उठा। रूप के अपरूप दर्शन से मैं एक बार ही अपना वहिर्ज्ञान खो बैठा। तब क्या वाह्यिक सौंदर्य भी अभ्यन्तर की वस्तु है?

अब गाड़ी आने ही चाहती है, केवल ५ मिनट की देर है। अभी यमदूत की भांति, मुख से अग्नि निकालती हुई, घोर कोलाहल करती हुई, पृथ्वी को कंपायमान करती हुई, रेलगाड़ी अपनी भीमकाय मूर्ति से कोमल हृदयों को भीत करती हुई प्लेटफार्म पर आ खड़ी होगी।

स्टेशन अब कोलाहल-पूर्ण हो उठा। दोनों सुन्दरियाँ भी अपने-अपने विचलित वस्त्रों को उचित रीति से पहनने लगीं। उसी समय चन्द्रकला के गले का सुवर्ण-मंडित पवित्र रुद्राक्ष अपनी पावन प्रभा का प्रकाश प्रसारित करता हुआ हिल गया। मैंने सोचा, क्या पवित्र शैवी रुद्राक्ष शृंगार की रक्षा करने के लिए चन्द्रकला के निकट रहता है? क्या नीलकंठ ने अपनी कंठमाला का परम-पावन रुद्राक्ष आज मूर्तिमती सुन्दरता के कंठ में, प्रसाद रूप में पहना दिया है।

इस समय जन-समूह, सागर की तरंगमाला की भांति कभी इधर कभी उधर घूमता था। दोनों सुन्दरियाँ भी अपने-अपने स्थान पर, माधवी एवं मालती की भाँति, दीवार के सहारे खड़ी हो गईं। दोनों चन्द्रवदन शरत् के शुभ्र पयोधर में ढके हुए थे, किन्तु उनका स्निग्ध प्रकाश किसी उत्कंठित प्रेमी चकोर के लिए उस समय अत्यन्त सुखद था।

हिन्दू-समाज की अबला-मंडली में लज्जा का प्रबल राज्य है, हिन्दू-ललनाओं की प्रीति-मंदाकिनी सर्वदा लज्जा-कानन के अभ्यन्तर ही में मधुर, परन्तु शनैः-शनैः, कलरव करती हुई वेग के साथ, किन्तु आवेग-

रहित होकर, बहती है। यहाँ प्रीति-पुष्प इतना नहीं खिलता कि निर्बल होकर गिर पड़े, यहाँ का गुलाब खिलता है, परन्तु खिलखिलाता नहीं है। कली फूल होती है, किन्तु फूल का पल्लव कभी सूखता नहीं। दोनों सुन्दरियाँ भी लज्जावती लता की भाँति एक ओर खड़ी थीं। कभी-कभी उनके अंग-विक्षेप से दामिनी चमक उठती थी।

मैं भी अपने स्थान से उठा। एक बड़ा झोंका आया। एक बार जल की सहस्रों बूंदें कुसुम-कली के साथ मेरे ऊपर बरस पड़ीं। मैंने हँसकर तरुवर की अन्तिम अभ्यर्थना सादर शीश पर ग्रहण की। चलते समय मैंने कहा—"विटपवर! जगदीश्वर तुम्हें और भी हरा-भरा करें। तुम्हारा माली सच्चे हृदय से सदा तुम्हारी सेवा करे। तुम सर्वदा कल्याण-शीतल जलपान करो।" तरुवर ने दो चार कली और बूँदें फिर बरसाईं। एक ओर से कोई पक्षी मधुर स्वर में बोल उठा, मैंने समझा—संभवतः तरुवर ने भी समझा होगा—पक्षी कह रहा है—"तथास्तु"। मैंने फिर कहा—"तथास्तु।"

अब मैं उनके बिल्कुल सम्मुख आ गया। वस्त्राच्छादित होने पर भी उनके अनिंद्य अंगावयव अपने अपूर्ण लावण्य से उद्भासित हो रहे थे। उसी समय एक ओर से, एक लतामंडप के अभ्यंतर से, एक पालित मयूर बोल उठा। चन्द्रकला चौंक उठी; क्या उर्वशी को नंदन-कानन के पालित मयूर का ध्यान आ गया? आज क्या मयूर अपने श्यामघन के अंक स्थित दामिनी को प्रसन्न कर रहा है?

समय हो गया।

असीम प्रेम और अनंत समय भी क्या सीमाबद्ध हो सकते हैं?

(४)

निखिल-आशा-आकांक्षामय दुःखे-सुखे
झाँप दिए तार तरंगपात धर्बो बूके।
मंद-भालोर आघात वेगे तोमार बूके उठबे जेगे।

शुनबो वाणी विश्वजनेर कलरवे
प्राणेर रथे बाहिर होते पाबों कवे।

—रवींद्र कवींद्र

Though woe heavy; yet it seldom sleeps:
And they that watch see time how it creeps.

—*Shakespeare*

विस्तृत क्षेत्र में प्रवाहित होनेवाली कल्लोलिनी की भांति समय शनैः-शनैः गमन करता है, किन्तु मनुष्य को अपनी गति के अनुसार उसकी गति प्रतीत होती है। कौन नहीं जानता कि सुख के दिन शीघ्र कट जाते हैं, और दुःख के क्षण कल्प-काल के तुल्य प्रतीत होते हैं?

रेलगाड़ी, मेघ-गर्जन का अनुकरण करती हुई, आ खड़ी हुई। अब जन-कोलाहल, समुद्र की फेनावृत तरंग-माला की तरह, सारे प्लेटफार्म पर फैल गया। कोई कुली को पुकारता है; कोई किसी से झगड़ा करता है। फल, मिठाई आदि के विक्रेता क्रेतागण से बहस कर रहे हैं।

मैंने सोचा—"संसार की शांति क्या इसी भाँति क्षणभंगुर है!"

चन्द्रकला और कलावती उन भद्र सज्जन के साथ चलीं। नौकर ने कुलियों के साथ जाकर एक इण्टर-क्लास में सामान रखवाया। चन्द्रकला आदि भी उसी ओर बढ़ीं।

मैं चन्द्रकला से कुछ दूर पर चलने लगा। सोचने लगा, कैसी अपूर्व गति है। क्या मंजुल मरालिनी और मत्त मातङ्गिनी की गति-विधि अपने पूर्व-पुण्य को मिलाकर भी इसकी समता कर सकती हैं। उसके बाद विक्षेप पर किसके हृदय में विक्षेप नहीं होता। कविता और कामिनी का अपूर्व साम्य भी क्या इसीलिए है।

गाड़ी पर चढ़ने के समय कर-कमल के एक सुकुमार पल्लव में मुंदरी दिखाई दी, नक्षत्र की ज्योति की भाँति उसके मध्य का रत्न चमक रहा था। मुँदरी भी चन्द्र-कला की कला की भाँति कल्पनातीत कमनीयता की कला थी। आज पल्लव और कली का अपूर्व सहवास है। कल्प-पल्लव और कल्प-कली दोनों ही तो अभीष्ट-प्रद है।

गाड़ी पर दोनों बहनें बैठ गईं। बिजली की आभा और भी अधिक चमक उठी। दोनों ने लैंप की ओर देखा। बिजली की किरणमाला कामिनीद्वय के मुखमण्डल पर पड़कर उनके शीशभूषण और कर्ण-भूषणों से केलि करने लगी। मै भी देखने लगा। उस अपूर्व त्रिवेणी में मैं "जय-जय सुन्दरते!" कहकर अवगाहन करने लगा। आश्चर्य की बात है, आज आँखों से अमृत पीकर मैं परम प्रसन्न हुआ।

गाड़ी छूटने का समय आ रहा है। तीन मिनट और शेष है। क्या तीन मिनट के उपरान्त यह गैस की आभा होने पर भी प्लेटफार्म पर अंधेरा हो जायगा? कौन आश्चर्य है, सूर्य भगवान् के होने पर भी कितनों के हृदयागार सर्वदा कालिमा—परिपूर्ण रहते हैं। एकटक देख रहा था, उसके साथ के भद्र सज्जन महाशय पास से होकर चले गए। मैंने सोचा, क्या मेरी धृष्टता इन्होंने पहचान ली? मैं वहाँ से दूसरी ओर हट गया। हटकर वहाँ से सुधांशु की सुधा पीने लगा।

पानी वेग से पड़ने लगा। सब जन-समूह गाड़ी के अन्दर बैठ गया। उस निर्जन प्लेटफार्म पर केवल मैं उस दूर-स्थित ललना की लावण्य-लहरी में लहरें ले रहा था। मेरे सब वस्त्र भींग गए थे, पर मुझे इसकी चिन्ता नहीं। सीटी हुई। गार्ड ने हरी लालटेन दिखाई। गाड़ी ने सीटी दी। हृदय भी एक बार स्तंभित हो गया। क्या सीटी में कोई वज्र निहित है? मेघ के गर्जन में तो इन्द्र का आयुध अवश्य रहता है।

गाड़ी चल दी; मन की गति भी उसी के साथ चली। मन की मणि चली; मन भी चला। जीवन की विभूति चली; जीवनकी अभिलाषा भी संग गई।

मैं अपने को न रोक सका, मैंने गाड़ी के पास पहुँचकर सौरभमय बेला के फूलों की अंजलि गाड़ी के पास छोड़ दी। अकारण ही मुख से निकल गया—"राजराजेश्वरी भगवती कल्याण सुंदरी की जय।"

मालूम नहीं, उन्होंने सुना या नहीं। भद्र सज्जन मेरे विषय में जान पाए या नहीं, सो जगदीश्वर जाने।

गाड़ी चल दी। उसी समय पानी का वेग और भी बढ़ा। हृदय भी आवेग के प्रबल वेग में बोला—"क्या यह अंजलि व्यर्थ जायगी?"

उसी समय एक विहंग बोला, मैंने उस देव-वाणी का अर्थ न समझा।

मैं स्थिर दृष्टि से दूर तक रेल की लाल-लाल आँखें देखा किया। मेरी अंजलि से उनकी आँखों में रोष की लालिमा अथवा अनुराग की रक्तिमा, दोनों में से किसका प्रादुर्भाव हुआ होगा, सो क्या पाठक-पाठिकाएँ बता सकते हैं!

मैं गाते हुए, भींगते हुए और सोचते हुए घर को लौटा। रात को कई बार उठ-उठकर यह गान गाया—

कबहूँ तोहिं भूलि सकहु घनश्याम,
एक बार पेखत हिय वारचो, जन तन मन धन धाम।
अब की मिलहु मूँदि करि राखौं, लोचन बीच ललाम :
मिलिहौ कबहुँ काहु दिन पावन, हुलसावन अभिराम।
तब लौं जपि तुव नाम नित्य ही, तजिहौं सब गृह-काम;
लाज-काज परिहास हास तजि, तजिहौं गोकुल ग्राम।

राजदण्ड !

लेखक—श्री गुलाबरत्न वाजपेयी 'गुलाब'

(१)

वह कवि था—सौन्दर्यका उपासक और सरस्वतीका भक्त ! यमुना के किनारे उसकी कुटी थी। चाँदनी रातके शीतल प्रकाशमें वह कविता-सुन्दरीके साथ जलक्रीड़ा किया करता था। उषा उसके मुखपर गुलाल मलती थी—वह गोधूलिके साथ होली खेला करता था !

उसका कहना था—मेरी कविता चन्द्रमाकी चाँदनी है। शब्द परिस्तानके हैं और छन्द शंकरजीके ताण्डव नृत्य ! वह जिस समय कविता लिखता, उसके मुखमण्डलपर एक अजीब रौनक छा जाती थी। कभी वह अपने हृदयको फूल जैसा कोमल बना लेता, कभी वज्रकी तरह कठोर ! कभी उसकी आँखोंसे आँसू झरते, तो कभी उसका चेहरा गुलाब के फूलकी तरह खिल उठता था।

जब उसकी कविता पूरी हो जाती—वह झूम-झूमकर उसे पढ़ता, नाचता, गाता और मुस्कुराता। कई बार अपनी कविता पढ़ता, फिर भी उसे तृप्ति न होती। खुश होकर कहता—"यह मेरी कविता नहीं। कलेजे के टुकड़े हैं, जो सफेद कागजपर स्याहीके बून्दोंमें चमक रहे हैं।"

उसके इस कथनमें सत्यकी मात्रा भी बहुत थी; क्योंकि रायगढ़-नरेश उसकी प्रतिभापर मुग्ध थे। उन्होंने कविके सम्मानमें अपना सर्वस्व न्यौछावर कर रखा था।

(२)

एक दिन प्रातःकाल कविको राजा का निमन्त्रण-पत्र मिला, जिसमें लिखा था—"प्रिय कवि !

आगामी शरत् पूर्णिमाको बड़ी धूमधाम के साथ शरदोत्सव मनाया जायगा। आप उस दिन अपनी भावपूर्ण कवितासे हम लोगोंका मनोरञ्जन कीजियेगा। रियासतकी सम्पूर्ण प्रजा उस दिन आपके स्वागतमें हृदय बिछा देगी।

स्नेहपात्र—

रायगढ़-नरेश।"

कवि इन शब्दोंको पढ़कर बुलबुलकी तरह चहक उठा—"मैं उस दिन ऐसी कविता सुनाऊँगा, जिसके सामने संसारकी सभी कविताएँ फीकी जाचेंगी। मैं अपनी इस कवितामें काश्मीरका सौन्दर्य भर दूँगा। शारदा भी इस कविता को सुनकर मधुर वीणा बजाना भूल जायगी।"

उसने नाचती हुई अँगुलियोंसे भोजपत्रका एक चौकोर टुकड़ा उठाया, कलम दावात ली, फिर चला यमुना किनारे कविता लिखने।

उसके हृदयमें हिलोरें उठ रही थीं—"मैं वाल्मीकि हूँ। मैंने ही संसारको अद्भुत काव्यग्रन्थ प्रदान किया है।"

परन्तु अफसोस!—एक दो दिन नहीं, कई दिन व्यतीत हो गये, वह कविताकी एक लकीर भी नहीं लिख सका। उसने बहुतेरा हाथ-पैर पटका, मन्नतें मानीं, प्रकृति और परमात्माकी पूजा तथा आराधना की, किन्तु सब व्यर्थ!

उसकी सम्पूर्ण प्रतिभा नष्ट हो गयी थी। क्यों? इसे पेड़-पत्ते तक नहीं जान सके। फरिश्तोंको भी इसका पता नहीं लग सका, मनुष्यकी क्या बिसात है।

(३)

यह सही है कि हम लोग जब किसी अपूर्व सुख-सौन्दर्यका वर्णन

करने बैठते हैं: तब उसकी उपमा स्वर्गसे देते हैं। लेकिन उस दिन रायगढ़में जो शारदोत्सवकी धूम थी, वह इतनी आकर्षक, प्यारी और मनोहर थी कि उसकी कोई उपमा ही ढूँढ़े नहीं मिल सकती। स्वर्ग बेचारा तो एक कोने में बगलें झाँक रहा था।

हजारोंकी भीड़ थी, लेकिन सब खामोश! सुई गिरनेकी आवाज सुन लीजिये! चन्द्रमा बूढ़ा था तो क्या हुआ, उस दिन उसे जवानी आ गयी थी। अपना ऊँचा सम्मान पाकर कौन नहीं खुश होता?

मण्डपमें कविके पधारनेकी सूचना दी गयी। लोगोंका मुखमण्डल खिल उठा, सभी आनन्दमें झूमने लगे।

तुरहीकी मधुर ध्वनिके साथ कविका स्वागत किया गया। कविके सम्मानमें लोगोंने फूल बरसाकर अपने हृदय बिछा दिये। कवि स्वर्ण-सिंहासन पर जा बैठा।

राजाका हुक्म हुआ—कवि कोई कविता सुनायें। परन्तु कविने अपनी असमर्थता प्रकट की।

चारों ओर उदासी छा गयी। जहाँ स्वर्ग था, वहीं श्मशानका दृश्य नजर आने लगा!

राजा कविके पैरोंपर लोट गये। फिर भी कवि अपनी कविता सुनाने के लिये तैयार नहीं हुआ। राजाकी आँखें लाल हो गयीं। उसने गुस्सेके साथ पूछा—"कवि, आज तुम्हें क्या हो गया है? तुम अपनी कविता क्यों नहीं सुनाते?"

कविने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"शारदा रुष्ट हो गयी हैं। मैं एक शब्द भी नहीं बोल सकता।"

लोगोंने कानाफूसी शुरू कर दी—"कवि ढोंगी है। कलतक तो वह अपनेको शारदाका पुत्र और वाल्मीकिका अवतार बताता था, आज जब परीक्षा का समय आया—तब शारदा रूठ गयी है। बेवकूफ कहींका!"

लोग गालियाँ देने लगे। सम्पूर्ण जन-समाज क्षुब्ध हो उठा।

किसीने गुस्सेसे आँखें चढ़ा लीं, कोई लगा होंठ चबाने, कोई दाँत पीसने?

भयानक विद्रोह फैल गया।

राजा ने हुक्म दिया—"कविको गोली मार दो और उसकी झोपड़ी को फौरन आग लगाकर जला डालो।"

हजारों मशालें जल उठीं। कवि कुत्तेकी मौत मारा गया। उसकी झोपड़ीमें धू-धूकर आग जलने लगी।

वह आग!—हाँ; वह आग बड़ी भयानक थी। उसकी लपटों पर सहस्रों मतवाली आँखें ताण्डव-नृत्य कर रही थीं। शारदाके केश बिखर गये थे। वह पछाड़ें खा-खाकर रो रही थी। उसकी आँसुओंकी बूँदोंमें एक कविता लिखी थी, जिसका भावार्थ यह था—

"गलियोंमें पागल कुत्तेकी तरह घूमो। भीख माँगकर गुजारा कर लो, लेकिन हे सरस्वतीके उपासक! तुम अमीरोंकी दोस्ती कभी न करो, क्योंकि मनुष्यके सर्वनाशका यह सबसे ज्यादा खतरनाक रास्ता है।"

—*:*—

ग्वालिन

लेखक—श्रीयुत 'मलयानिल'

(यह कहानी गुजराती-साहित्य में बहुत ही उच्च श्रेणी की समझी जाती है। इसके लेखक केवल इसी कहानी के कारण गुजराती-साहित्य में अमर हो गये हैं।)

वह पूर्ण युवती थी। अनेकों के अधरों पर चौदहवें वर्ष में गुलाबी रंग जमता है, अनेकों के नेत्रों में सत्रह-अठारहवें वर्ष में ज्योति झलकती है, पर उसके कण्ठ में तो पन्द्रहवें वर्ष में कोयल कुहुकने लगी थी। निर्दोषता अब विदा हो रही थी। बालभाव यौवन के लिये स्थान खाली कर रहा था। बन्द कली अब विकसित हो रही थी।

वह शिक्षिता न थी, तब भी उसमें चातुर्य्य था। शहर की न थी, तब भी सौजन्य था। उच्च कुल की न थी, तब भी गोरे वर्ण की थी।

सिर पर पीतल का चमकता हुआ दूध का बर्तन रक्खे, जब वह नगर में प्रवेश करती, तो साक्षात् लक्ष्मी-जैसी मालूम होती थी। उसकी 'दूध लो दूध!' की आवाज, गली-गली में सुनाई देती और दतौन करते हुए प्रत्येक आदमी की दृष्टि उसकी ओर घूम जाती थी। पुरुषों के लिए यह शुभ शकुन होता, परन्तु स्त्रियों को इससे ईर्ष्या होती थी।

वह ग्वालिन थी। रोज सबेरे दूध बेचने को अपने गांव से निकलती थी और तालाब में नहाकर ताजा दुहा दूध लोगों की सेवा में उपस्थित करती थी। उससे दूध लेने की सभी को इच्छा होती थी। 'दूध लो, दूध!' की आवाज सुनते ही बस्ती की स्त्रियाँ बिछौने से उठ बैठती थीं।

वह हमेशा पीली किनारी की लाल साड़ी पहनती थी। उसके हाथ में चाँदी के कड़े थे। पैरों में रूपे के कड़े और बाजू पर चाँदी के अनन्त पहनती थी। सिर की साड़ी आधे कपाल तक खिंची रहती थी, जिससे किसी को यह न मालूम होने पाता था कि उसकी माँग कैसी है। वह बाल सँवारती होगी, माँग में सेंदुर लगाती होगी—यह कल्पना ही सौंदर्य्य को और बढ़ा देती थी।

मैं उसके आने के समय ही रोज दतौन करने बैठता था। सामने से जब वह आती, तब मैं निर्लज्ज की भाँति एकटक उसकी ओर देखने लगता था। वह लजाती न थी, पर दृष्टि को फौरन नीची कर लेती और

दो-चार कदम बढ़कर 'दूध लो, दूध ! की मधुर आवाज गुँजा देती थी।

मैं अपनी पत्नी से रोज कहा करता था—'तुम इस ग्वालिन से दूध क्यों नहीं लेतीं ?' 'दूध लोगी बहूजी ?' कहते-कहते उस बेचारी का रोज मुँह दुख आता होगा; पर तुम्हें कुछ परवाह नहीं !'

न जाने क्यों मेरे हृदय में उस ग्वालिन के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया था। ऐसी खूबसूरत होकर भी यह ग्वालिन क्यों हुई ! ईश्वर भी बिना समझे-बूझे सौंदर्य दे देता है।

उस दिन से मेरी इच्छा हुई कि मैं भी ग्वाला हुआ होता तो अच्छा होता। मुझे अलगोजे बजाना आता होता तो अच्छा होता। अलगोजा बजाता-बजाता मैं गाँव की सीमा पर अपने गायन को गुँजा देता तो बड़ा आनन्द आता।

बारम्बार उसका सौंदर्य देखने से मेरा हृदय न जाने कैसा बदलता जा रहा था। उसकी गम्भीर; परन्तु तीक्ष्ण आँखों की ओर रोज मेरा हृदय दौड़ने लगता था। अब मेरी यह इच्छा होने लगी कि मैं इसके साथ गली-गली में भटकूँ, यह कहाँ जाती है, यह देखूँ।

एक रोज सवेरे जब आठ का घण्टा बजा, तो मैं उठ बैठा। नगर के प्रवेश-द्वार पर जाकर खड़ा हो गया। दूध बेचकर घर जाने के लिये वह अभी आवेगी। मैं उसके पीछे-पीछे जाऊँगा और पूछूंगा कि तू कौन है ? तेरी आँखों में कौन-सा जादू है ? ग्वालों की जाति में भी क्या ऐसी-ऐसी परियाँ होती हैं ?

इस प्रकार की कल्पना करता हुआ मैं खड़ा रह गया। इसी समय हाथों में पैसे गिनती हुई वह आ पहुँची। दरवाजे के बाहर निकली। ऊँची गर्दन; पर नीची नजर से वह चलने लगी। मैं भी उसके पीछे हो लिया।

रास्ते पर गाड़ी के पहियों के जो चीले बने हुए थे, उनके बीच में से वह चल रही थी। कड़ों पर धूल जम गई थी। सामने की धूप होने से मैं अपनी आँखों को छिपाकर, उसके सौन्दर्य—उसके यौवन के

तेज से अभिभूत होकर, यह देखने के लिए कि यह कहाँ जाती है, बात-चीत करने की इच्छा से उसके पीछे-पीछे चलने लगा। उसके चरित्र को दूषित करने की मेरी कामना न थी, परन्तु उससे बात-चीत करने—उससे मेल-जोल बढ़ाने के लिए मैं आतुर था।

उसे कुछ सन्देह हुआ। थोड़ी दूर चलती और पीछे देखने लगती थी। मैं कुछ ठहर जाता और फिर चलने लगता था।

लगभग एक मील चलने के बाद वह ठहर गई। वहाँ बड़ के पेड़ की सघन छाया थी और उसके नीचे पथिकों के ठहरने के लिए मड़ैया बनी थी। ऊपर पक्षी कलरव किया करते, कोयल कुहुकती रहती और नीचे गाय-भैंसें चरा करतीं और बछड़े इधर से उधर दौड़ते रहते थे। दृश्य भी मनोहर था और ग्वालिन भी मनोहर!—प्रकृति में सौन्दर्य मिल गया था।

मड़ैया के बाहर उसने दूध का बर्तन सिर से उतारकर रख दिया और रास्ते के एक ओर, जहाँ प्रायः सब ग्वालिनें बैठा करती हैं, वह बैठ गई। पैर समेटकर—बर्तन आगे रखकर।

मैं विकट परिस्थिति में पड़ गया। चला जाऊँ, या खड़ा रहूँ, या इसके साथ बातचीत करूँ? हृदय तो धड़कने लगा था। साहस करके शक्ति एकत्र की थी; पर इस सुन्दरी ग्वालिन ने सारी शक्ति का हरण कर लिया। मेरी उलझन को वह समझ गई। मैं उसी के पीछे आ रहा था, यह वह जान गई। मेरे गाँव में दूध लेकर आने के कारण वह मुझे अच्छी तरह पहचानती थी।

विचार करके मैं उसी रास्ते से आगे बढ़ने लगा। कुछ ही कदम आगे गया था कि इतने में वह बोल उठी—"मोहन भैया, कहाँ जा रहे हो?"

मुझे बोलने का अवसर मिल गया। मैं खड़ा हो गया और हृदय को दृढ़ करके बोला—'तुम्हारा गाँव कहाँ है, यही मुझे देखना है।'

'तो यह कौन बात है ? लो पहले दूध पियो, तुम्हें मेरी सौगन्ध है'—कहकर उसने आध सेर के लगभग दूध नाप के लोटे में निकाला।

'लो पियो, बहूजी तो मुझसे कभी दूध नहीं लेतीं; लेकिन जरा देखो तो, यह बकरी-भैंस का दूध है, कितना मीठा है!

'नहीं, मैं न पीऊँगा! इस तरह कहीं दूध पिया जा सकता है? पैसे लो तो पीऊँगा।'

'पैसे-पैसे क्या कर रहे हो! इस तरह कहीं पैसे लिए जाते हैं? इधर आओ, जरा इसे चखो तो।'

मैं बड़े अचरज में था; पर उसका एक शब्द भी मुझे अपने विरुद्ध न मालूम हुआ। पहले तो मैं समझा था कि शायद वह धमकायेगी, गालियाँ देगी कि 'तुम मेरे पीछे क्यों आ रहे हो?'

मगर यहाँ तो मामला ही दूसरा था। दूध में शक्कर न थी, न वह तपाया हुआ ही था, पर मैं उसे पी गया। पैसे तिगुने देने लगा, पर उसने लिए ही नहीं। बोली—'बेचने आऊँगी तब पाई-पाई का हिसाब ले लूँगी, पर इस तरह जब आप मेरे आँगन में आए हैं, तब एक रुपया भी खर्च हो जाय, तो कोई चिन्ता नहीं।'

बातून है, इससे ठीक पटेगी। इसकी यह गम्भीरता, जाने कहाँ हवा हो जायगी! मैंने पूछा—'तुम कौन जात हो?'

'जात और क्या होगी, हम हैं ढोरों को चरानेवाले ग्वाले लोग।'

'तुम्हारा ब्याह किसके साथ हुआ है?'

'रहो भी मोहन भैया! यह तुम क्या पूछने लगे?'—कहकर वह लजाती हुई हँस पड़ी।

'नहीं-नहीं, बताओ तो!'

'अपनी ही जात के एक ग्वाले के साथ!'

मैं अपने होश में न था। क्या पूछना चाहिये और क्या नहीं, इसकी सुधि न थी। मैंने पूछा—'तुम जानती हो कि प्रेम किसे कहते हैं?'

'क्या कहा ?'

'प्रेम किसे कहते हैं, यह तुम नहीं जानती हो ? तुम्हारा पति तुम्हें कभी बुलाता है, तब तुम्हारे हृदय में क्या होता है ?'

'तुम पागल तो नहीं हो गए मोहन भैया ? कैसी बातें कर रहे हो ?

'कुछ कहो तो, सच कहता हूँ, मैं तुम्हारे ही पीछे यहाँ तक आया हूँ। मुझे भय था कि गाँव में किस प्रकार बातें हो सकेंगी, इस ख्याल से यहाँ आना पड़ा।'

'हाय-हाय ! मैं भैंस के लिए खली लाई थी, उसे भूल आई, मोहन भैया, जरा तुम मेरे दूध के बर्तनों को देखते रहोगे ? मैं खली की टोकरी ले आऊँ। इस छप्पर के नीचे आराम से बैठना। मैं अभी आती हूँ—फिर तुम्हारी बात जरूर सुनूँगी।'

उपकार का इससे अच्छा अवसर और कब मिलता ? मैं दूध के बर्तन को मड़ैया में रखवाकर, पैर फैलाकर बैठ गया।

वाह री सुन्दरी ! तेरी ग्रामीण भाषा में कितना माधुर्य है ! बस आज कई नये प्रश्न पूछ डालूँगा, न जाने इसने क्या कर डाला है। यदि इसने बढ़िया साड़ी पहनी होती, सिर पर फूलों की वेणी बँधवाई होती, शहर की तरह बोलना इसे आता होता, और साथ ही इसी तरह मदमाती चाल से चलती और उस समय कदाचित् मैं ही इसका पति होता, तो अहा ! कितने लोग मेरे प्रति ईर्ष्या करते !

सौन्दर्य की देवी ग्वालिन चली गई। मेरे दिमाग को मथ गई—हिला गई।

मैं उसके बर्तन पर लिखे हुए नाम को देखने लगा। उसपर केवल 'भुरिया' लिखा था। शायद 'भुरिया' ही नाम हो ? नैहर से ससुराल जाते समय यह बर्तन इसे दिया गया होगा। भाषा को देखते हुए उसका नाम बड़ा कर्कश था, परन्तु उसका चेहरा ? उसकी ग्राम्य निर्दोषता ! उसका 'दूध लो, दूध !' का गुञ्जन ? मैं बैठा-बैठा इसी विचारों में तल्लीन था। पीछे

की एक खिड़की और ऊपर के छप्पर की ओर मेरी अस्थिर दृष्टि घूम रही थी, इतने में वह आ गई।

पूछा—बैठे हो भैया ?

'भला तुम्हारा काम, और मैं बैठा न रहूँगा! टोकरी ले आई।'

'कहाँ भैया, चार-पाँच घरों में जाकर पूछ आई; पर कहीं पता न लगा। न जाने किस घर में भूल आई।'—इतना कहकर वह वहीं बैठ गई।

'भुरिया!'—मेरे मुँह से इतना सुनते ही वह विस्मय में डूब गई।

'मेरा नाम तुमने कैसे जाना?'

'देखो, यह तुम्हारे बर्तन पर लिखा है। यह बर्तन तुम्हें तुम्हारे मैके से मिला है, क्यों, विवाह के समय?'

मैं उसी में संलग्न हो गया था, इसलिए उसकी प्रत्येक चीज को देखकर अनुमान करने लगा। उसके गले में सौत की पुतली पड़ी थी, इसपर मैंने अनुमान किया कि यह द्वितीया है। बदन पर वह रेशमी चोली पहने थी, नाक में लौंग और कानों में करनफूल। वह निकट बैठी थी, इससे मैं उसे ध्यान-पूर्वक देख रहा था। अन्त में मुझे फिर सनक सवार हुई।

'तुम जानती हो, प्रेम किसे कहते हैं? तुम और तुम्हारा पति, एक दूसरे को परस्पर प्यार करते हैं या नहीं?

'तुम भी खूब हो भैया!—वह मुँह फेरकर हँसने लगी।

'नहीं, नहीं, जरा कहो तो।'

'तुम पूछ रहे हो, सो तो मैं नहीं समझती। सबेरे उठकर हम दोनों दूध दुहते हैं, मैं भैंस दुहती हूँ, वे गाय। दूध दुहकर उन्हें चारा डालकर हम दूध बेचने के लिए शहर में निकलते हैं। पहले रास्ते में तालाब पर फुर्ती से नहाते हैं, फिर कपड़े धोकर शहर के फाटक तक साथ आते हैं। दूध बेचकर मैं इस जगह उनके लौटने तक बैठी रहती हूँ।'

तुरन्त ही मुझे एक खयाल हो आया। अगर इसका पति आकर मुझे इसके साथ बैठा देख ले, और फौरन ही लाठी तानकर खड़ा हो जाय,

तो इज्जत धूल में मिल जाय। शिक्षित होते हुए भी मुझे नीचा देखना पड़े। इस विचार से मेरे मुख पर चिन्ता और भय छा गया। वह मेरे हृद्गत भावों को समझ गई।

'तुम किसी तरह का भय न करो। आज मैं यहाँ बहुत जल्दी आ गई हूँ। उनके आने में अभी बहुत विलम्ब है।'

मन को जरा तसल्ली हुई और फिर वहीं बातें शुरू हो गई।

'तुम्हारा पति अलगोजों में क्या बजाता है? मैं भी यदि तालाब पर खड़ा रहकर बजाऊँ, तो मुझे बजाना आ सकता है?'

'इसमें कौन बात है। यह तो सभी को आ सकता है, पर तुम्हें हम लोगों की बातें इतनी क्यों पसन्द हैं?'

'तुम्हारे ही लिए भुरिया, जो तुम खाती हो, वही मैं खाऊँ, तुम्हारी ज्वार-बाजरे की रोटी को हजम करूँ, तुम्हारी गायों को चराने जाऊँ—बस यही मन में समा गई है। तुम्हारा गाँव अभी कितनी दूर है।

'चार पाँच खेतों की दूरी होगी—वे जो झोपड़ियाँ दिखाई दे रही हैं, वहीं तो है। तुम हमारी झोपड़ी में रह सकते हो भला! हम लोग तो कम्बल पर ही सो रहते हैं। बाहर चारपाई बिछाकर पास ही ढोरों को बाँध दिया जाता है। तुम्हें भला ऐसी जगह पर अच्छा लग सकता है।'

'मुझे तो यह सब बहुत पसन्द है और जब तुम-जैसी कोई मेरे निकट हो, तब तो कहना ही क्या है।'

बात-चीत से तो मुझे यही मानना पड़ा कि यह मुझपर कुरबान है। इसके हृदय को चुराने में मैं सफल हुआ हूँ और कदाचित् अब यह हमेशा ही अपने हृदय के भाव मुझपर प्रकट किया करेगी।

फूल की तरह मेरा हृदय खिल रहा था। झरने की तरह मेरी कल्पना-सृष्टि की रचना होती जा रही थी। केतकी की तरह मेरा हृदय डोल रहा था। तिनका हाथ में लेकर, जमीन पर उससे लकीरें खींचती हुई—उसे टेढ़ा करके धनुष सा बनाती हुई और फिर तोड़कर उसके

टुकड़े करती हुई वह खिलवाड़ कर रही थी और जरा भी घबड़ाहट, भय या शरम के बिना वह मुझसे, एक मेरे मित्र की भाँति बात-चीत करती जा रही थी। क्षणभर के लिए हम दोनों ने ही शान्ति धारण की और इतने में—जिस प्रकार आकाश में बिजली चमके और बच्चे का हृदय धड़क उठे—वाटिका में अघोरघंट प्रवेश करे और मालती का प्राण सूख जाय; उसी प्रकार सहसा उस मड़ैया की खिड़की खोलकर मेरी पत्नी ने उसमें से झाँका, मेरा हृदय धड़क उठा। शरीर थर-थर काँपने लगा। उसकी आँखें क्रोध के कारण छलछला आईं। मैं सोचने लगा—अब क्या करूँ? क्या बतलाऊँ? वह भी उलझन में पड़ गई। वह बहुत कुछ कहना चाहती थी, पर जैसे होश ही न था। भुरिया-ठगिनी ग्वालिन—साड़ी से मुँह छिपाकर हँस रही थी।

चित्रकार को इस घटना के तीन चित्र अङ्कित करने थे—एक काली कराली का, दूसरा जादूगरनी का और तीसरा एक मूर्ख का।

अनुवादक—श्री "रमेश"

मेज़ की तसवीर

लेखक—श्री भगवतीचरण वर्मा बी० ए० एल० एल-बी

रामनारायण ने लिखना आरम्भ किया 'जीवन एक पहेली है और मृत्यु उस पहेली का उत्तर है—" और उसकी दृष्टि सामने मेज पर रक्खे हुए फोटोग्राफ पर पड़ी। उसका हाथ रुक गया, उसकी विचार-

धारा एकाएक विशृङ्खल हो गई। उसने अपना फाउन्टेनपेन रख दिया।

वह फोटोग्राफ एक स्त्री का था, जिससे कभी रामनारायण ने प्रेम किया था, और जिसने कभी रामनारायण से प्रेम किया था। उसका नाम था मनोरमा और रामनारायण के सामने उसका विद्यार्थी-जीवन आ गया "हाँ—वह कितना अच्छा जीवन था। मनोरमा! यह मनोरमा मेरे साथ पढ़ती थी और—और मैं उससे प्रेम करता था। फिर क्या हुआ? हाँ, मनोरमा से मैंने उसका चित्र माँगा, चित्र लेकर चाँदनी के चौखटे में मैंने मढ़वाया; यही तो उसका चित्र है न—वही बड़ी-बड़ी आँखें—वही मुख पर बच्चों का सा भोलापन, वही उसकी तन्मयता!' रामनारायण मुसकराया—उठकर उसने चित्र को उठा लिया, अपनी आँखों के अधिक नजदीक लाकर उसने उस चित्र को अच्छी तरह से देखा—"हाँ, मनोरमा से मैं प्रेम करता था, और वह भी मुझसे प्रेम करती थी। पर हाँ याद आया, वह मुझसे विवाह नहीं कर सकती थी—विवाह की कोई आवश्यकता भी तो नहीं थी—क्यों?" रामनारायण चित्र की ओर देखते हुए भी न देख रहा था—वह केवल सोच रहा था—"हाँ; हाँ, वह विवाह पर विश्वास नहीं करती थी और मैं भी विवाह पर विश्वास नहीं करता था। बिना जीवन की कठिनाइयाँ झेले हुए जीवन का आनन्द लेने में हम दोनों विश्वास करते थे—" रामनारायण मुसकराया "ठीक! कितना सुन्दर विचार था, क्योंकि आज मैं विवाहित हूँ, मेरे पास धन नहीं है और मेरी पत्नी है, बच्चे हैं—सब के सब कितने निराश्रय हैं, कितने निरीह हैं!' रामनारायण की मुसकराहट गायब हो गई "ठीक है—पर मनोरमा ने तो विवाह कर लिया, वह अपनी बात पर जमी—रह सकी; और वह सुखी है। उसका पति लखपती आदमी है, उसके पास मोटर है, बंगला है। वह आज अगाध वैभव की स्वामिनी है, और मैं—मैं भिखारी से भी गया बीता हूँ। पर मनोरमा ने विवाह क्यों किया? मुझसे उसने कहा था कि वह विवाह न करेगी। फिर क्या उसने मुझे धोखा दिया था?' राम-

नारायण ने तसवीर उसी स्थान पर रख दी जहाँ वह रक्खी हुई थी, "मनोरमा का विवाह पहले हुआ था, मुझे याद है उसने मुझे निमन्त्रण भी तो दिया था, और मै—मै उसके विवाह में नहीं गया। मुझे उसपर क्रोध था, उसने मेरे साथ विश्वासघात किया था। उसे विवाह करना ही न चाहिये था, और अगर उसे विवाह करना था तो वह मेरे साथ विवाह करती। उसने मुझे धोखा दिया और उसने अपने पति को धोखा दिया। उसका पति हम दोनों के सम्बन्ध को भला कैसे जान सका होगा—उफ़ मनोरमा का यह काम कितना घृणित था; कितना दूषित था।"

रामनारायण ने फाउन्टेनपेन उठा लिया, पर वह अपनी विचार-धारा को न तोड़ सका, "पर इसमें उसका दोष? कमजोरियाँ किसमें नहीं होतीं? उसने अच्छा ही किया जो उसने मेरे साथ विवाह नहीं किया। मेरे साथ वह कितनी दुखी होती। मेरी स्त्री ही कौन सुखी है। और फिर मै ही कौन अपनी बात पर अटल रहा? मैं भी तो विवाह के विरुद्ध था न—"

एकाएक रामनारायण के हृदय में यह विचार आया "पर मैंने मनोरमा की तसवीर अभी तक क्यों रख छोड़ी? मनोरमा मेरी है कौन? वह तो एक विगत् सपना है—इससे अधिक कुछ नहीं। जब से हम दोनों अलग हुए तब से फिर से एक बार मिले तक भी नहीं। फिर इसकी तसवीर मेरी मेज़ पर क्यों है? और मेरी स्त्री को देखो—वह सारा किस्सा जानते हुए भी कभी मेरी मेज पर मनोरमा के चित्र के रक्खे रहने पर विरोध नहीं करती—उफ़, मेरी स्त्री कितनी सीधी है—वह देवी है। अच्छा ही हुआ जो मनोरमा ने मुझसे विवाह नहीं किया—मेरी स्त्री मनोरमा से कहीं अच्छी है, कहीं अधिक सीधी है। मैं अपनी स्त्री से सुखी हूँ। फिर मनोरमा की फोटो की मेरी मेज पर क्या आवश्यकता—सब समाप्त हो गया तब उसकी याद ही क्यों बाकी रही—" रामनारायण ने तसवीर उठा ली। "आज इस तसवीर को नष्ट क्यों न कर दूँ—पर नहीं, नहीं मैंने इससे प्रेम किया था—किया क्यों था, अब भी करता हू।

यदि मैं उससे प्रेम न करता होता तो मुझे उसपर क्रोध क्यों होता? हाँ, मैं कहता हूँ कि मैं उससे अब भी प्रेम करता हूँ। क्या यह ठीक है? मैं उसके विवाह में क्यों नहीं गया? उसके विवाह के बाद मैं उससे फिर कभी क्यों नहीं मिला—केवल इसलिये कि मैं उससे क्रोधित हूँ, और यही क्रोध की भावना मेरे प्रेम की द्योतक है।"

रामनारायण ने तसवीर की ओर देखा—"पर क्या यह आवश्यक ही है कि प्रेम का अन्त विवाह हो? मैंने उससे प्रेम किया, क्या यही काफी नहीं है? उसके विवाह कर लेने पर मुझे क्रोधित क्यों होना चाहिए था—उफ़ मैं कितना मूर्ख हूँ! बिना विवाह किए भी प्रेम किया जा सकता है, फिर मैं अभी तक मनोरमा से मिला क्यों नहीं?" रामनारायण के मुख पर एक पैशाचिक मुसकराहट आई। "प्रेम तो बिना विवाहित हुए ही किया जा सकता है। उफ़, मैं कितना मूर्ख था कि मैं अभी तक मनोरमा से नहीं मिला। अब क्यों न मिलूँ—मुझे देखकर वह कितनी प्रसन्न होगी, मेरे जाते ही वह आत्मसमर्पण कर देगी—कल ही चलना चाहिए। हाँ, प्रयाग से कानपुर का कितना खर्च लगेगा? दस रुपये!" रामनारायण की मुसकराहट लोप हो गई। 'दस रुपये! एक कहानी लिखने में इतना मिल जायगा। पर अभी मकान का किराया नहीं दिया है, पत्नी बीमार है और खाने का सामान खतम होने को आ गया है। इन सबका प्रयत्न—उफ़ जीवन में रुपया कितना भयानक है, और मनुष्य कितना विवश है! प्रत्येक पग पर वह अपनी विवशता अनुभव करता है, मैं कितना विवश हूँ। धन! धन! संसार वही धन का गुलाम है"—एकाएक विचार-धारा बदली—"और मनोरमा! वह भी तो धन की गुलाम है! उसने मुझसे प्रेम करते हुए भी उस लखपती से विवाह किया—केवल धन के वास्ते। धन सभी बातों पर विजय पा सकता है, प्रेम पर भी—प्रेम पर भी!" रामनारायण ने तसवीर मेज़ पर रख दी—"हाँ, रुपया प्रेम पर भी विजय

पा सकता है—प्रेम पर ही क्यों, हमारी मनुष्यता पर, हमारी आत्मा पर ! हम सब रुपये के लिए घृणित-से-घृणित काम करते हैं—खुशामद करते हैं, झूठ बोलते हैं, धोखा देते हैं—कुछ नहीं, हम सब रुपये के गुलाम हैं—" रामनारायण मुसकराया, उसने कागज़ पर अपना ध्यान लगाया, कलम चली।

"पर क्या मृत्यु भी उस पहेली को सुलझा सकती है...!"

त्याग

लेखक—ऑनरेबुल पंडित प्रकाशनारायण सप्रू

मैं अपनी जीवन-कथा लिखने का प्रयत्न कर रही हूँ। यह एक ऐसी कहानी है जो मेरे लिए सदैव विमोहक है। आज मैं ३५ वर्ष की एक तरुण स्त्री हूँ। मेरे सामने एक जीवित संसार है। मुझे इस संसार में रहना और रहकर कुछ काम करना अच्छा लगता है। कुछ महान् कार्य्य करना और कुछ महान् साहस की बातें सोचना मुझे अच्छा लगता है। परन्तु क्या मैं सदैव ऐसी ही थी ? अच्छा तो प्यारे पाठक ज़रा मेरी कहानी सुन लीजिए। सम्भव है, आपको यह रुचिकर प्रतीत हो।

मैं पंडित रामरत्न शुक्ल की एकमात्र पुत्री थी। मेरे पिता एक बैरिष्टर थे और संयुक्त-प्रान्त के पहाड़ी जिलों में बैरिस्टरी करते थे।

मुझे अपने बचपन के वे दिन याद आते हैं। आह! मेरे पिता मुझे कितना मानते थे। और मेरी माँ! वह तो अपना सर्वस्व मुझपर बलि करने को तैयार थी। हमारा परिवार कितना सुखी था। मगर कमी थी तो सिर्फ यह कि मेरे भाई नहीं था। मैं चाहती थी कि मेरे एक भाई भी हो। मेरे माता-पिता भी एक पुत्र की कामना करते थे। परन्तु कदाचित् ईश्वर को यह स्वीकार नहीं था कि वह उन्हें एक पुत्र और मुझे एक भाई प्रदान करे। इस प्रकार माता-पिता के अमित लाड़-प्यार में पलकर मैं क्रमशः बड़ी हुई, एक कन्वेंट में पढ़ने के लिए भेजी गई, डिस्टिंक्शन के साथ मैंने सीनियर कैम्ब्रिज की परीक्षा पास की। फिर मैं कालेज में भर्ती हुई और इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी से फ़र्स्ट क्लास आनर्स के साथ ग्रेज्युएट होकर निकली। उस दिन मेरे माता-पिता को मुझपर कितना गर्व हुआ था!

मेरे मित्रों में लड़कियाँ और लड़के दोनों ही थे और माता-पिता मेरे सभी मित्रों की ख़ातिर करते थे। हम टेनिस खेलते, ताश खेलते और कविता, दर्शन, इतिहास और राजनीति के प्रति अपना अनुराग प्रकट करते।

मेरे पिता साम्यवाद विचार के थे, परन्तु मेरी माँ पुराने खयाल की थीं और कट्टर थीं। मेरा झुकाव पिता की ओर था। वे मुझे बुद्धिवाद और साम्यवाद के पथ पर अग्रसर होते देखना चाहते थे। धर्म से उन्हें चिढ़ थी। बुद्धिवादी कहलाने में वे गौरव का अनुभव करते थे। बुद्धिवाद पर उन्होंने पुस्तकें भी लिखी थीं। यह सब होते हुए भी वे बहुत ही पूर्ण और दृढ़ इच्छा-शक्ति के पुरुष थे। और मुझ अपनी एकमात्र संतान के लिए तो वे उत्साह के बहुत बड़े उद्गम थे। मुझे दुःख है कि आज वे इस संसार में नहीं रहे।

बी० ए० पास करने के पश्चात् मैंने अपने पिता से आग्रह किया कि वे मुझे इँग्लैंड भेजें। कहने की आवश्यकता नहीं कि मैं इँग्लैंड

भेजी गई। लेडी मारगरेटहाल के मेरे वे दिन कितने गौरवशाली थे। मैं बहुत-सी अन्य लड़कियों से सर्वथा भिन्न थी। मैं एक बहुत बड़ी पाठिका थी। मेरा बातचीत का ढङ्ग बहुत ही आकर्षक था। मैं भाषण भी बहुत अच्छा करती थी और सामाजिक कार्यों में मेरी बहुत उत्साह साथ भाग लेने की आदत थी। और मित्र! मेरे बहुत से मित्र थे, परन्तु मेरा खयाल है, उनमें एक व्यक्ति ऐसा था जो औरों की अपेक्षा मेरे अधिक निकट था। वह व्यक्ति था सुरेन्द्रमोहन भट्टाचार्य्य। आक्सफ़ोर्ड में उन दिनों जो भारतीय विद्यार्थी थे, भट्टाचार्य्य उन सबमें तेज़ था। वह इण्डियन सिविल सर्विस में दाखिल हो चुका था और अपनी उम्मैदवारी का समय वहाँ व्यतीत कर रहा था।

उसी समय एक घटना घटी। मुझे भट्टाचार्य्य के साथ अपनी मैत्री का बन्धन कुछ और दृढ़ होता हुआ जान पड़ा और मैंने उसके प्रति उसी भाव से सोचना आरम्भ किया जैसा कि एक स्त्री एक पुरुष के प्रति सोचती है। उसने विवाह का प्रस्ताव किया। मैं आक्सफ़ोर्ड में थी तभी मेरे पिता मर गए थे। मेरी माँ प्राचीन विचारों की ओर कट्टर थीं। उन्हें यह विचार पसन्द नहीं आया, पर उन्होंने कोई बाधा नहीं डाली और मेरे इतिहास की एक उच्च परीक्षा पास करने के बाद हमारा विवाह शान्तिपूर्वक हो गया।

यहाँ मैं अपने सुहाग के उन प्रथम दिनों की चर्चा नहीं करूँगी। हमने वे दिन स्वीज़लैंएड के पहाड़ों में नृत्य, स्केटिंग और घोड़े की सवारी में व्यतीत किए। आह! वे दिन कितने सुन्दर थे। अब वे वापस नहीं आ सकते।

खैर, अन्त में वह समय भी आया, जब हम स्वदेश लौटे और मेरे पति शिलाङ्ग में नियुक्त किए गए। पर वे मुझे अपने परिवार में नहीं ले गए। वे बराबर यही कहते रहे कि उनके परिवारवाले इसे पसन्द नहीं करेंगे। उन्होंने मुझसे कहा कि मुझमें इतना साहस नहीं है कि

मैं तुम्हें अपने माता-पिता के पास ले चलूँ। वे इतने कट्टर हैं कि अपने घर में दूसरी जाति की पश्चिमी सभ्यता में पली स्त्री का स्वागत करने के लिए वे कदापि तैयार न होंगे। इस बीच में मेरी माँ आईं और वे मेरे पास एक महीना या कुछ ऐसा ही रहकर चली गईं। उन्हें अपनी सम्पत्ति की निगरानी करनी थी।

अस्तु, यह सब मजे में चलता रहता, यदि मेरे हाथ में एक पत्र न पड़ जाता। वह पत्र पढ़कर मैं अधीर हो उठी। वह पत्र सुरेन्द्र ने एक पुस्तक में, जिसे वे पढ़ रहे थे, छोड़ दिया था। इत्तिफ़ाक से मैंने वह पुस्तक पढ़ने के लिए उठा ली और मेरे हाथ वह पत्र आ गया। पत्र पढ़ने पर मैं आश्चर्यचकित हो उठी। वह एक युवती का पत्र था, जिसके सम्बन्ध में मैंने अनुमान किया कि वह सुरेन्द्र की प्रथम पत्नी अवश्य है। कितना हृदय-स्पर्शी वह पत्र था, कितना दर्दनाक और दुःखांत! उसने सुरेन्द्र से प्रार्थना की थी कि वे उसे न छोड़ें, उसके प्रेम की कद्र करें और एक 'मेम साहब' पर अपने जीवन की बलि न दें।

मैंने अपने आपसे प्रश्न किया कि क्या मैं ऐसी मेम साहब हूँ, और मुझे कोई उत्तर न मिला। मैंने सोचा, कदाचित् उस स्त्री का प्रेम मेरे प्रेम की अपेक्षा अधिक गहरा है। कुछ भी हो, मुझे यह जरूर जान पड़ा कि उसे सुरेन्द्र की आवश्यकता मेरी अपेक्षा अधिक है। इस प्रकार निश्चय कर चुकने पर जब वे घर आए तब मैंने पूछा कि क्या उनके कोई ऐसी पत्नी है जिसका उन्होंने मेरी खातिर त्याग कर रक्खा है। मेरे इस प्रश्न पर, जो मैंने अत्यन्त शान्तभाव से पूछा था, वे स्तब्ध रह गए। पहले तो उन्होंने प्रतिवाद करना चाहा, परन्तु अन्त में उन्होंने कुछ समझा और कहा—"हाँ, मैंने तुम्हें धोखा दिया है। परन्तु मैं उस स्त्री को प्यार नहीं करता। उसके साथ मैं इंग्लैंड जाने से पूर्व सिर्फ़ १५ दिन रहा हूँ। वह मेरे योग्य नहीं है।" उन्होंने और भी कहा—"मैं उसके लिए समुचित व्यवस्था करने के लिए तैयार हूँ और उसे

जो कुछ वह चाहे करने की स्वाधीनता देने को तैयार हू। और उसे स्वतन्त्र छोड़ सकता हूँ कि उसके जी में जो आवे सो करे। अपने जीवन के शान्तिमय प्रवाह में उसे विघ्न उपस्थित करने का अवसर हम क्यों दें?"

मैंने कहा—नहीं। यह नहीं हो सकता। तुमने मेरे साथ अन्याय किया है और मुझसे भी अधिक उस बेचारी अबला के साथ अन्याय किया है।

अच्छा तो अब आगे की कहानी सुनिए। मैं किंकर्तव्य-विमूढ़-सी हो रही। समझ में न आया कि क्या करूँ। अन्त में मैंने निश्चय किया कि मैं उस स्त्री से उसके पिता के घर में जाकर मुलाकात करूँगी।

मैंने सुरेन्द्र को अपने इस निश्चय की सूचना दी। उन्होंने इसका बड़ा विरोध किया, पर मैंने उनके विरोध की परवाह न की। मैंने उस स्त्री के घर जाकर उससे मुलाकात की। मैंने देखा कि वह कैसी सुन्दर और प्यारी है—सकुचाली और सलज्ज और जिस पति ने उसको त्याग दिया है उसके लिए सर्वस्व बलि कर देने को प्रस्तुत। जब मैंने उससे कहा कि मैं कौन हूँ तब उसने बड़े प्रेम से मेरा स्वागत किया और मेरे साथ बहन का-सा व्यवहार किया।

मैंने उससे कहा—बहन सुरेन्द्र के साथ तुम रहो और मैं तुम दोनों की बहन बनकर रहूँगी और अपना समय समाज-सुधार के कामों में लगाऊँगी। उसके लिए काफी क्षेत्र है। तुम्हारी आवश्यकता मेरी अपेक्षा अधिक है।

यह निश्चित हो जाने पर मैंने सुरेन्द्र को इसकी सूचना दी। वे विचलित से हो उठे। परन्तु मैंने उनसे कहा कि प्रेम का सच्चा सार त्याग है और उनका त्याग करने पर मेरे हृदय में उनके प्रति प्रेम ज्यों-का-त्यों रहेगा।

इस घटना को दस वर्ष हो गए। मेरे ये दस वर्ष मिल के मजदूरों

के बीच घोर परिश्रम में व्यतीत हुए हैं। और मैंने उनके जीवन को अधिक सुखमय बनाने का प्रयत्न किया है।

सुरेन्द्र और कमला के दो बच्चे हैं—एक लड़का और एक लड़की। वे दोनों मुझे बहुत चाहते हैं और मैं प्रायः उनसे मिलने जाती हूँ। सच तो यह है कि मैं अपनी छुट्टियाँ उन्हीं के पास व्यतीत करती हूँ।

क्या मैं प्रेम के अभाव का अनुभव करती हूँ? हाँ। परन्तु ऐसे लोग हैं जिन्हें मैं अपना प्रेम प्रदान कर सकती हूँ। और सेक्स की बात तो मैं सर्वथा भूल ही गई हूँ। पर जिन्हें मैं प्यार करती हूँ उन्हें सुखी बनाने में ही मैं सुख का अनुभव करती हूँ। पाठक यह न सोचिए कि मैं आत्मश्लाघी हूँ। मैं केवल आत्मकथा का एक अंश सुना रही हूँ, ताकि मेरी ही भाँति बिछुड़े हुए लोगों को उस समस्या के हल करने में सहायता मिले जिसका मुझे सामना करना पड़ा है।
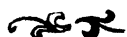
प्रेम-प्रपंच

लेखक—श्री इलाचंद्र जोशी

सुंदर बाग,

लखनऊ.

आपको एक अपरिचित महिला का यह पत्र पाकर निश्चय ही आश्चर्य होगा। स्वयं मुझे यह सोचकर आश्चर्य हो रहा है कि मैं क्यों आपको पत्र लिखने बैठ गयी। मुझे साहस ही कैसे हुआ, मैं समझ नहीं पाती। मैं सोच रही हूँ कि जीवन में सब कुछ सम्भव है। कोई अज्ञात प्रेरणा

कभी-कभी मनुष्य को बरबस एक ऐसे पथ पर ले जाती है, जिससे खास तौर से बचने के लिए वह जीवन में सदा सजग और सचेत रहने की चेष्टा करता रहता है। मेरा भी आज यही हाल है। खैर—

आपको याद होगा, प्रायः आठ-दस दिन पहले जब आप अपनी पत्नी के साथ (सम्भवतः आपके साथ की महिला आपकी पत्नी ही रही होंगी) कानपुर से लखनऊ जा रहे थे, तो जिस दूसरे दर्जे के डिब्बे में आप बैठे थे उसी के एक बर्थ पर—आपके सामनेवाले बर्थ पर—एक युवती बैठी थी, जो नीले रंग की साड़ी पहने थी। वह गोरे रंग की थी और बार-बार आपकी ओर देखती थी। आप भी बीच-बीच में—शायद कौतूहलवश—उसकी ओर देखते थे; पर बार-बार झेंपकर नजर फेर लेते थे, किन्तु वह युवती—जो अकेली यात्रा कर रही थी—कतई नहीं झेंप रही थी और बड़ी धृष्टता से आपकी ओर देखती थी। वह बेहया युवती (आप निश्चय उसे 'बेहया' ही समझते होंगे) मैं ही हूँ। मैं आपकी ओर गौर से इसलिए देख रही थी कि आपको देखकर मुझे एक ऐसे लड़के की याद आती थी जिसके प्रति छुटपन से ही मेरे मन में एक अत्यन्त स्निग्ध भावना रही है, पर जो वर्षों पहले अमेरिका चला गया और अब वहीं बस गया है।

मैंने आपके सूटकेस पर आपका नाम लिखा हुआ देख लिया था। जब लखनऊ स्टेशन पर हमलोग उतरे तो मैंने एक अत्यन्त करुण दृष्टि से आपकी ओर देखा था और आपने भी कुछ सकुचाते हुए अपनी गम्भीर किन्तु सहृदयता और मार्मिकतापूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा था। घर पहुँचते ही मैंने टेलीफोन डाइरेक्टरी में आपका नाम देखा। डाइरेक्टरी में जगतमोहन नाम के कई व्यक्ति थे, पर जगतमोहन तिवारी, एम, ए, (आक्सन) नाम के दो व्यक्ति नहीं थे। इसलिए निश्चित विश्वास से कि वह व्यक्ति आप ही हैं, मैं उसी नाम के पते पर आपको यह पत्र भेज रही हूँ।

मेरे मन में बरबस यह अदम्य इच्छा उत्पन्न हो गयी है कि आपसे मिलूँ। किसी भारतीय नारी के लिए किसी अपरिचित पुरुष से एकान्त में बातें करने का प्रस्ताव अत्यन्त निन्दनीय और अशिष्ट है, यह मैं जानती हूँ—विशेषकर एक अविवाहिता नारी जब किसी विवाहित पुरुष के आगे इस प्रकार का प्रस्ताव करे, तब तो वह निश्चय ही जहन्नुम में जाने योग्य समझी जायगी। पर मनुष्य का मन जब बेबस हो उठता है तब वह कभी इस प्रकार के तर्कों के आधार पर विचार नहीं करना चाहता। आप आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी के एम, एम, हैं, इसलिए आपको यह समझाने की आवश्यकता न होगी कि और सब विषयों पर होश-हवास दुरुस्त रहने पर भी किसी एक विशेष विषय पर मनुष्य का मन एकदम पागल-सा हो उठता है, और नारी इस सम्बन्ध में अपवाद नहीं हो सकती।

मैं अभी आपको नहीं बताऊँगी कि मैं कौन हूँ और क्या करती हूं। जब तक मैं आपके रुख से भलीभाँति परिचित न हो जाऊँ तब तक मैं कोई इंगित इस सम्बन्ध में आपको नहीं दूंगी, मैं अपना असली नाम और धाम अभी छिपाये रक्खूँगी। मैं एक कल्पित नाम से आपको पत्र लिख रहा हूँ और जो पता मैंने दिया है वह मेरा नहीं है। पर आप इसी कल्पित नाम से और इसी पते पर जो पत्र भेजेंगे वह मुझे मिल जायगा, इसका प्रबन्ध मैंने किसी उपाय से कर लिया है।

इस समय आप केवल इतना ही जान लीजिए कि मैं जीवन में अकेली हूँ और इस निपट अकेलेपन ने ही मुझमें आपको पत्र लिखने का असाधारण दुःस्साहस पैदा किया है। यदि मैं दो दिन के भीतर कोई उत्तर आपसे नहीं पाऊँगी तो समझलूँगी कि आपको मुझसे मिलकर बातें करने की कोई उत्सुकता नहीं है। ऐसी हालत में मेरी केवल एक ही प्रार्थना आपसे है, वह यह कि इस पत्र को आप तत्काल जला डालियेगा और इस बात को भूल जाइयेगा कि किसी बेहया नारी ने कभी कोई पत्र आपको लिखा था।

विनीता,

स्वर्णकुमारी देवी.

पुनश्च—अपना लिखा पत्र स्वयं पूरा पढ़ने के बाद मैं अत्यन्त लज्जित हो उठी हूँ। इसे जला डालने की इच्छा होती है, पर कोई अज्ञात शक्ति मुझे इसे जलाने से रोक रही है।

* * *

क्ले स्कायर,

लखनऊ.

प्रिय स्वर्णकुमारीजी,

आपका पत्र पढ़कर मुझे आश्चर्य भी हुआ, भय भी और हर्ष भी। हाँ, मुझे अच्छी तरह याद है, मैंने कानपुर से लखनऊ जाते ट्रेन पर आपको देखा था, और मैं स्वीकार करता हूँ कि आपकी ढिठाई मुझे कुछ असाधारण-सी लगने पर भी आपके व्यक्तित्व ने मुझे बहुत आकर्षित किया था। आपने ठीक ही लिखा है कि आपकी ओर बीच-बीच में ताकते हुए भी मैं झेंप रहा था। वास्तव में स्त्रियों के सम्बन्ध में मैं न चाहने पर भी अत्यन्त संकुचित हो उठता हूँ। यदि और किसी स्त्री का इस प्रकार का प्रस्ताव मेरे पास आता तो, सच मानिये, मैं उसे तत्काल अस्वीकार कर देता, और उसका कोई उत्तर भी देना पसन्द न करता। पर आपके व्यक्तित्व ने एक तो यों ही मुझे अत्यन्त प्रबलता से आकर्षित कर लिया था, तिस पर आपके पत्र ने एक अदमनीय कौतूहल मेरे मन में उभाड़ दिया है। इसलिए आपसे मिलकर मुझे प्रसन्नता ही होगी। कृपया लिखिए कि आपसे कब, कहाँ और कैसे मिलना हो सकता

भवदीय,

जगतमोहन तिवारी.

* * *

सुन्दरबाग,
लखनऊ.

प्रिय जगतमोहनजी,

आपका पत्र पाकर जो प्रसन्नता हुई उसका वर्णन नहीं कर सकती। मैं तो धड़कते हुए कलेजे से आपके पत्र की प्रतीक्षा कर रही थी। क्या आप अगले इतवार की संध्या को ६ बजे कैसरबाग के पास इम्पीरियल होटल के बगलवाले सिनेमाघर के बाहर मिल सकेंगे? मै वही नीली साड़ी पहने रहूँगी जिसे मैं उस दिन ट्रेन में पहने थी। आपके आने पर दोनों एक साथ फिल्म देखेंगे। पहली बार इस प्रकार एक दूसरे के निकट आने पर दोनों का संकोच बहुत कुछ दूर हो जायगा। याद रखियेगा, इतवार, २८ ता०, संध्या को ६ बजे, इम्पीरियल होटल के पास—

विनीता,
स्व. कु.

* ❀ *

सुन्दरबाग,
लखनऊ.
इतवार की रात ९ बजे

प्रिय जगतमोहनजी,

मैं अत्यन्त लज्जित हूँ। न जाने आप मेरे सम्बन्ध में क्या सोचते होंगे। आपको निश्चय ही मेरी प्रतीक्षा में काफी परेशानी उठानी पड़ी होगी। पर मैं क्या बताऊँ, मेरी विवशता सी थी कि मैं लाख चाहने पर भी आने में असमर्थ रही। मैं तैयार होकर ज्यों ही चलने को थी त्यों ही तीन स्त्रियाँ, जिनके साथ वर्षों से मेरी घनिष्टता हैं, मेरे यहाँ आ धमकीं। मैंने कितने ही बहाने बनाये, पर वे एक प्रकार से बलपूर्वक बहुत देर तक मुझे रोके रहीं। मैं मन-ही-मन उन्हें कोसने लगी। आप कल्पना नहीं कर सकते कि मेरे मन के भीतर क्या बीत रही थी। प्रतिक्षण आपकी प्रतीक्षा का सजीव चित्र मेरे मन की आँखों के आगे घूम रहा था। आशा करती हूँ मेरी विवशता का खयाल करके आप मुझे क्षमा करेंगे। अब

क्ले स्क्वायर,
इतवार.

आपसे प्रार्थना है कि बुधवार को ठीक उसी समय उसी नियत स्थान पर मिलने की कृपा करें—अवश्य, चूकियेगा नहीं।

विनीता,
स्व० कुमारी.

* * *

क्ले स्क्वायर,
सोमवार की सन्ध्या.

प्रिय स्वर्णकुमारीजी,

वास्तव में उस दिन मैं बहुत परेशान रहा। प्रायः आठ बजे तक मैं होटल के पास चक्कर काटता रहा और अत्यन्त उत्सुकता से आपकी प्रतीक्षा करता रहा। पर आप भी विवश थीं, इसलिए बीती बात पर पश्चात्ताप व्यर्थ है।

बुधवार को फिर आपकी प्रतीक्षा में रहूँगा।

आपका,
जगतमोहन.

* * *

सुन्दरबाग,
बुधवार की रात ११ बजे

प्रिय जगतमोहनजी,

मैं साढ़े आठ बजे तक आपका इन्तजार करती रही। क्या आपने मेरी उस दिन की विवशता का बदला चुकाने के इरादे से मुझे धोखे में रखा? आपको मैं एक उत्तरदायित्वपूर्ण सयाना आदमी समझती थी; पर आप भी...! खैर। क्या आप कृपापूर्वक सूचित करेंगे कि उस दिन आप क्यों नहीं आये? उचित उत्तर न पाने पर मैं भविष्य में किसी प्रकार की भी लिखा-पढ़ी आपसे जारी नहीं रख सकूँगी।

इतना लिख चुकने के बाद मेरे मन में एक सन्देह उत्पन्न होने लगा है। मुझे याद नहीं आता कि मैंने एम्पायर होटल लिखा था या इम्पीरियल होटल। वास्तव में ये दो होटल अलग-अलग हैं, दोनों कैसरबाग के पास हैं और दोनों की बगल में सिनेमाघर हैं। मैं एम्पायर होटल के पास आपका इन्तजार कर रही थी। आप कहीं इम्पीरियल होटलवाले— पर नहीं, मेरा वह सन्देह शायद निर्मूल है।

विनीता,

स्व. कु.

* * * *

क्ले स्क्वायर,
बृहस्पतिवार,

प्रिय स्वर्णकुमारीजी,

सचमुच इम्पीरियल होटल और एम्पायर होटल के झगड़े ने सब गड़बड़ कर दिया। मैं इम्पीरियल होटल के पास आपका इन्तजार कर रहा था। मैंने आपका पिछला पत्र खोलकर फिर एक बार पढ़ा, उसमें स्पष्ट नागरी अक्षरों में 'इम्पीरियल होटल' लिखा हुआ था। आप शायद तब जल्दबाज़ी में कुछ का कुछ लिख गई थीं। खैर।

मैं सोच रहा हूँ कि हम लोगों को मिलने का स्थान बदल देना चाहिए। क्या आप अगले शनिवार की संध्या को ७ बजे अमीनाबाद पार्क में मिल सकेंगी? मेरे खयाल से वह सबसे उपयुक्त स्थान रहेगा, क्योंकि वहाँ भूल नहीं हो सकेगी।

आपका,
जगतमोहन,

* * *

सुंदरबाग,
शुक्रवार, प्रातःकाल.

प्रिय जगतमोहन जी,

शनिवार के लिए आपका ऐप्वाइंटमेंट मुझे स्वीकार है।

आपकी,

स्व. कु.

*　　　*　　　*

सुंदरबाग,

शनिवार.

प्रिय जगतमोहन जी,

जान पड़ता है, आप मुझे धोखा देने के लिए कसम खाए बैठे हैं। मैं १० बजे रात तक अमीनुद्दौला पार्क में आपके इन्तजार में परेशान होती रही। बहुत से लफंगे मेरे आसपास मँडरा रहे थे और कुछ तो तरह-तरह के घृणित व्यंग और अनुचित संकेत तक करते रहे। फिर भी मैं मन मारकर दाँतों को चुपचाप पीसती हुई अत्यन्त अधीरता से आपकी प्रतीक्षा करती रही। मुझे आपके स्वभाव को पहचानने में बड़ा धोखा हुआ। अब मैं समझी कि आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी की डिग्री किसी पुरुष के मूल स्वभाव को बदलने में समर्थ नहीं हो सकती। भविष्य में आपके साथ किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करने की इच्छा नहीं होती।

आपकी,

स्वर्ण.

*　　　*　　　*

क्लेस्क्वायर

प्रिय स्वर्णकुमारी जी, इतवार

नाराजगी से भरा आपका पत्र मिला। मुझे फिर कोई पत्र आपको लिखने का साहस न होता, पर अन्त में आपने 'आपकी—स्वर्ण' लिखकर मुझे हौसला दिया है।

स्वर्णकुमारी जी, मैं क्या बताऊँ? मालूम होता है, भाग्य हम लोगों के मिलने में बाधा पहुँचाने के लिए षड्यंत्र रच रहा है। मैंने अपने पत्र में लिखा था अमीनाबाद पार्क, और आप पढ़ गईं अमानुद्दौला पार्क; इस दुर्भाग्य के लिए मैं क्या करूँ। मालूम होता है आप घबराहट के साथ मेरे पत्रों को पढ़ा करती हैं, और घबराहट में ही पत्र लिखती हैं। कृपया मेरा पिछला पत्र खोलकर एक बार गौर से पढ़िए, और उसके बाद मुझे जैसी आज्ञा देना उचित समझें दीजिए।

आपका,
जगतमोहन,

* * *

सुंदरबाग,
सोमवार

प्रिय जगतमोहन जी,

सचमुच मुझसे बड़ी भारी—बल्कि अक्षम्य भूल हुई। मैंने आपका पिछला पत्र खोलकर पढ़ा। उसमें सचमुच अमीनाबाद पार्क लिखा हुआ था। कुछ भी हो। अब इन सब पिछली भूलों और, आपके ही शब्दों में, भाग्य के षड्यंत्रों पर पछताने से कोई लाभ नहीं हो सकता।

अब मैं अंतिम बार आपके आगे एक निश्चित प्रस्ताव रखना चाहती हूँ। यदि आप पिछली सब परेशानियों को भूलकर मेरे इस प्रस्ताव को मान लें, तो मुझे विश्वास है कि इस बार हम लोगों को पूर्ण सफलता मिलेगी।

चूँकि लखनऊ हम लोगों के लिए अशुभ स्थान सिद्ध हुआ है,

इसलिए हम लोग लखनऊ से बाहर कहीं मिलें। मेरा प्रस्ताव यह है कि आगामी बृहस्पतिवार को हम लोग कानपुर के किसी होटल में मिलें। मैं किसी आवश्यक काम से कानपुर जा रही हूं। बुधवार को मैं व्यस्त रहूँगी। बृहस्पतिवार को मुझे फुरसत रहेगी। उस दिन आप नेशनल होटल में शाम को ६ बजे से लेकर ७ बजे तब किसी भी समय पहुँच जायँ। होटल के मैनेजर को मैं अपना यही नाम—स्वर्णकुमारी—बताए रहूँगी। पूछने पर वह आपको मेरे कमरे का नम्बर बता देगा।

आपकी,
स्व० कु०

* * *

श्रीमती तिवारी का पत्र अपनी चचेरी बहन को:—

क्ले स्क्वायर,
१५ अप्रैल

प्यारी बहन चंद्र,

तुम्हें अपने दुःख की कहानी किस प्रकार सुनाऊँ, कुछ समझ में नहीं आता। तुम बराबर अपने जीजाजी के स्वभाव और चरित्र की प्रशंसा करती रही हो। इसलिए तुम्हें विश्वास नहीं होगा यदि मैं बताऊँ कि वह आजकल पतन के किस गढ़े में पाँव रख चुके हैं। इधर मैंने उनकी जो परीक्षा ली उससे उनके मन की हालत देखतीं तो तुम्हें आश्चर्य होता। मेरे मायके की बिरादरी का एक लड़का कुछ दिनों से लखनऊ आया हुआ है। वह रोज संध्या को हमारे यहाँ आता है और बड़ी घनिष्ठता से मुझसे बातें करता है—जैसा कि स्वाभाविक है, क्योंकि बचपन से हम दोनों साथ ही खेले-कूदे हैं। लड़का सच्चरित्र है, और मुझे अपनी सगी बहन की तरह मानता है। पर तुम्हारे जीजा जी आक्सफोर्ड की डिग्री-प्राप्त होने पर भी बड़े शक्की स्वभाव के आदमी हैं और उस लड़के को लेकर उन्होंने दो-चार व्यंग मेरे साथ किए।

उनका स्वभाव जानते हुए मैं नहीं चाहती थी कि लड़का मुझसे मिलने आए। पर वह बड़ा भोला लड़का है, मेरे किसी भी संकेत को समझने में वह असमर्थ रहा और नियमित रूप से प्रति दिन संध्या को मेरे यहाँ आने लगा। फलस्वरूप तुम्हारे जीजाजी का खीझना जारी रहा।

अंत में मुझे एक उपाय सूझा। मैंने सोचा कि जब तक रामजीवन (उस नौजवान लड़के का यही नाम है) लखनऊ में हैं तब तक कोई ऐसा चक्र रचा जाय जिससे तुम्हारे जीजाजी शाम को घर से बाहर टले रहें। मैंने अपनी संगिनी विमला से परामर्श किया। दोनों की सलाह से यह तय हुआ कि तुम्हारे जीजाजी को प्रेम-जाल में उलझाया जाय। हम दोनों ने मिलकर काल्पनिक प्रेम-पत्र लिखने शुरू कर दिए और एक ऐसी लड़की की तरफ से वे पत्र लिखे गए, जिसे तुम्हारे जीजाजी ने सचमुच एक दिन ट्रेन में देखा था। पत्र विमला ने लिखे।

मेरा विश्वास है कि आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी के एम, ए, के स्थान पर यदि कोई लखनऊ युनिवर्सिटी का साधारण ग्रेजुएट होता तो पहले ही पत्र से समझ लेता कि प्रेम-पत्र काल्पनिक है। पर तुम्हारे जीजा-जी में न तो इतनी समझ है और न इतनी चारित्रिक दृढ़ता है कि अपनी पत्नी का खयाल करके इस उलझन में (यदि वह वास्तविक होता तो भी) फँसने से विरत रहते। बहरहाल कई दिनों तक हम लोगों ने उन्हें काल्पनिक मिलन की व्यर्थ आशा में लखनऊ में भरमाया। तिस पर भी उनकी आँखें नहीं खुलीं और अब वह कानपुर इस आशा में चले गए हैं कि उनका मिलन सचमुच उस काल्पनिक प्रेमिका के साथ वहाँ के किसी होटल में होगा। आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी के डिग्रीधारी एक विवाहित प्रोफेसर का इस तरह लफंगों की तरह एक काल्पनिक प्रेमिका के मिलन की आशा में भटकते फिरना वास्तव में हास्यापद और साथ ही दयनीय भी है। मुझे सचमुच अब उनके प्रति दया आने लगी है। मुझे पता नहीं था कि तुम्हारे जीजाजी वास्तव में इस हद

तक भोंदू निकलेंगे। पुरुष-जाति की निर्बुद्धिता और चरित्र-हीनता के संबंध में जो अस्पष्ट विश्वास इतने दिनों तक मेरे मन में जमा हुआ था, वह अब सुदृढ़ हो गया है।

तुम्हारी जीजी—

प्रीति

* * *

क्ले स्क्वायर,

२६ अप्रैल.

प्रिय स्व० कु० जी,

कानपुर के होटल में आपसे मिलकर मुझे जो प्रसन्नता हुई उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। यदि आप न मिलतीं तो मैं आजीवन एक मर्मघाती ग्लानि की चुभन से पीड़ित रहता, जिसकी समाप्ति सम्भवतः मेरी आत्महत्या में ही होती। वास्तव में जैसा कि मैंने आपको बताया था, मैं जीवन में पहली बार इस प्रकार के 'एडवेनचर' के फेर में पड़ा था। आपके सीधे-सादे किंतु हृदय के मर्म-स्थान में प्रवेश करनेवाले पत्रों ने मुझ मूर्ख को (वास्तव में आज मेरी मूर्खता मेरे आगे स्पष्ट प्रमाणित हो गई है) इस हद तक प्रभावित कर दिया था कि मैं अपनी रही-सही सुध-बुध भी खो बैठा था। यदि कानपुर में आप मुझसे न मिली होतीं, और आपने सारी स्थिति मुझे समझाकर, जीवन के कर्तव्य के सम्बन्ध में मुझे एक महान् पथ प्रदर्शित न किया होता, तो मेरी क्या दुर्गति हुई होती, इसकी कल्पना भी आप शायद नहीं कर सकेंगी। आपसे मिलकर मैंने जाना कि नारी का हृदय वास्तव में महानता की किस ऊँचाई को छू सकता है, यद्यपि बीच-बीच में पुरुष-हृदय के साथ निर्मम खेल खेलकर वह निष्करुणा की चरम सीमा को भी पहुँच जाता है।

आज अपनी भूल जानकर भी मैं ग्लानि से मुक्त हूँ। आपके—

बल्कि नारी-जाति के—उन्नत चरित्र की महिमा से मेरा सारा हृदय प्रकाशमय हो उठा है। आज प्रीति को, सच्ची प्रीति को पहली बार समझने की बुद्धि मुझमें आई है, मेरी सबसे श्रेष्ठ गुरु आप ही हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

आपका श्रद्धालु—
जगतमोहन.

*   *   *

क्ले स्क्वायर,
२९ अप्रैल.

प्यारी बहन चन्द्रा,

जल्दबाज़ी में यह पत्र तुमको लिख रही हूँ—केवल यह जताने के लिए कि अनर्थ होते-होते रह गया। तुमको जो पत्र मैंने लिखा था, उसे डाक में छोड़ने के प्रायः आध घंटा बाद ही पता चला कि विमला मुझे कोई सूचना दिए बिना ही सचमुच कानपुर चली गई है। क्या तुम कभी कल्पना कर सकती हो ऐसे अनर्थ की?—वह सचमुच उसी होटल में जाकर तुम्हारे जीजाजी से मिली जहाँ मिलने की झूठमूठ की बात हम दोनों ने मिलकर 'काल्पनिक' प्रेम-पत्र में लिखी थी। यह बात बाद में स्वयं विमला ने मुझे बताई। बहन, तुम्हारे जीजाजी के संसर्ग में रहने से मेरे स्वभाव में भी बहुत शक्कीपन आ गया था, इसलिए विमला की सच्चरित्रता में सन्देह का कोई कारण न होने पर भी, मुझे दो दिन और दो रात तक ईर्षा और सन्देह की ज्वाला से जलने के कारण नींद नहीं आई। पर कल तुम्हारे जीजाजी का लिखा हुआ एक पत्र विमला के छद्म नाम से आया है। उसे पढ़कर मैं पहले तो आतंकित हो उठी, पर बाद में मैंने एक लम्बी साँस ली। उसे पढ़कर मेरा सन्देह प्रायः पूरे तौर से दूर हो गया, और साथ ही विमला की चारित्रिक दृढ़ता बुद्धि और साहस की मन-ही-मन भूरि-भूरि सराहना किए बिना मैं नहीं

रह सकी। मैं इस समय तुम्हें अधिक बातें नहीं लिखूँगी, कभी मिलने पर ही कहूँगी। अभी तुम केवल इतना ही जान लो कि विमला ने तुम्हारे जीजाजी का फिरा हुआ दिमाग़ दुरुस्त कर दिया है। मैं कान पकड़ती हूँ—फिर कभी ऐसा परिहास नहीं करूँगी। विमला ने बचा लिया, वर्ना तुम्हारे जीजाजी ने तो आत्महत्या ही कर ली होती। बापरे!

तुम्हारी जीजी—

प्रीति